1844-

महाभारत

नाटक

जिसमें

चैता चमार + सती ओपी

ये दोनों पार्ट मुद्रित हैं

लेखक

स्व पं० नारायणप्रसाद 'बेताब'

प्रकाशक

पं० जगन्नाथ प्रसाद शर्मा

बेताब पुस्तकालय

धरमपुरा, दिल्ली

समर्

सर्वाधिकार प्रकाशक के आधीन

NEW DEL

ॐ

अल्फ़रेड नाटक कम्पनी द्वारा अभिनीत

महा भारत

नाटक

जिसमें

चेता चमार+सती गोपी

ये दोनों पार्ट मुद्रित हैं ।

लेखक—

स्व० पं० नारायणप्रसाद 'बेताब'

प्रकाशक :—

पं० जगन्नाथ प्रसाद शर्मा

बेताब पुस्तकालय,

धरमपुरा, दिल्ली ।

दूसरी बार]   १९५० ई०   [मूल्य १)

मुद्रक—श्री भानु प्रिंटिंग प्रेस, धरमपुरा, दिल्ली ।

वक्तव्य

मैं नहीं चाहता था कि स्वरचित नाटक छापने के पड़कर अन्य साहित्यिक सेवा का स्थान रोकूं। मगर क्या क अपना बेटा लंगड़ा, लूला, काणा, अन्धा, कंजा, गंजा दोष-कोष सम्पन्न भी हो, तो भी अपने मन को बुरा नहीं लग क्या यह हो सकता है कि दोषी होने के हेतु जिसका जी चाहे ग़रीब लड़के पर कुठाराघात किया करें, उस अपाहज की रही टांगें तोड़ने की, आँखें फोड़ने की चेष्टा करें और बाप बैठा दे करे ? कोई भी औलाद वाला सहृदय गृहस्थ ऐसी सहन शीलत नैसर्गिक नियम के अनुकूल नहीं बता सकता।

कविता कवि की सन्तान है, उस पर अत्याचार पाषाण ह पिता भी नहीं सह सकता परन्तु कई प्रकाशक–जिन्हें बाजारी या मध्यकोटि के उचक्के कहना उचित है—नीच मार्ग से अस्तव नाटक प्राप्त करके छाप रहे और कागजों के साथ अ कर्म पत्र तथा मुंह भी काला कर रहे हैं। मैंने उचित समझा कचहरी का आश्रय लेने पर तो खाक डालो, केवल कोमल उपाय अवलम्बन करो, नक़ली और अधूरे नाटकों के आगे असली पूरे रख दो विज्ञ पाठक खुद देख भाल कर इसे उठा लेंगे हृदय से लगा लेंगे तो उन उच्छिष्ट-जीवी जीवों से घृणा और सत्यों की रक्षा स्वयं हो जायगी। इत्योम्

"बेताब"

समर्पण का सहोदर अनर्पण

१—हे मेरे महाभारत, गोरखधन्दा, कत्लेनजीर, पत्नीप्रताप आदि नाटकों को मेरी आज्ञा के बग़ैर ही प्रकाशित करने वाले प्रकाशको !

२—हे निन्द्य-नीति-निपुण न्याय-नाशको !

३—कलकत्ता बम्बई की बड़ी बड़ी कम्पनियों में नये नाटकों को दूर ही से तक लेने वाले दूरदर्शियों !

४—कम्पनी के कर्मचारियों से मिल मिलाकर—किसी न किसी प्रकार से भी—नाटक प्राप्त करने वाले मिलनसार पुरुषार्थियो !

५—लोक-लज्जा और परलोक-भय से न डरने वाले निर्भय वीरो !

६—कानून की आवाज़ को कानोंपर उड़ाने वाले धृति-धर्मावलम्बियों

७—लंगड़े लूले को भी चला देने वाले डाक्टरो !

८—स्वमुद्रित अपूर्ण ड्रामे को शाठ्य सूत्रों द्वारा पूर्ण सिद्ध कर देने वाले अर्थ-शास्त्रियो !

९—छलछिद्र और कपट की सृष्टि रचने वाले विरिञ्च-अनुचरो !

१०—कम्पनियों से नाटक चुराकर लाने वालों का पालन पोषण करने वाले विष्णु-भक्तो !

११—रचयिता के-नाम, काम, दाम रूपी-तीनों लोकों का संहार करने वाले शंकर सेवको !

मैं आपके इन दिव्य गुणों पर मोहित होकर, अपना यह नाटक ठगों के हाथों से दुखी हुई आपकी पीठके पीछे रखता हूँ। आशा है कि श्रीमान् इसपर दृष्टि न डालकर मुझे कृतार्थ करेंगे।

"बेताब"

भूमिका

जिस समय तारीख २९, जनवरी १९१३ ई० को यह नाटक स्व० सेठ काऊस जी पालन जी खटाऊ की कम्पनी द्वारा संगम थिएटर देहली में पहली बार खेला गया था, वह समय ऐसे धार्मिक तथा ऐतिहासिक नाटकों का नहीं था, इस लिये मालिक कम्पनी ने जो इस के खेलने का साहस किया वह प्रशंसनीय है । जब यह नाटक रङ्गशाला में आया तो सत्य की गुप्त-बल ने असत्य के प्रकटाडम्बर पर विजय प्राप्त के । इसके प्रकाश ने सब्जपरी को अन्धकार की तरह उड़ा दिया, गुल्फ़ाम को चोर की तरह छुपा दिया, ताजुलमलूक+गुलबकावली की कल्पित कहानियों के दिये ठंडे कर दिये । इसकी अपूर्व सफलता देखकर नाटक कम्पनियों के मालिकों ने अपना रुख बदल दिया, लेखकों ने इसका अनुकरण कल्याण कारक समझा। मेरे लिये यह कम गौरव की बात नहीं है। अश्लील नाटकों से घृणा करके जिन सुशील सज्जनों ने नाटक न देखने को प्रतिज्ञा कर रक्खी थी उन की प्रतिज्ञा टूट गयी। जो लोग अपने कुटुम्ब की स्त्रियों को नाटक दिखाना पाप समझते थे वो बेधड़क साथ ला-ला कर दिखाने लगे। देवियों ने तो इसका इतना आदर किया कि सेठ जी को विशेष रूप से केवल स्त्रियों के लिये प्रति सप्ताह एक नाटक करना पड़ता था जिसमें पुरुष दाखिल नहीं होते थे ।

नाटक की अपूर्व ख्याति और असीम धूम ने दर्शकों की संख्या बढ़ादी तो भिन्न रुचि दर्शक दल में दो मत पैदा होगये।

जहां इस नाटक के गुणों पर प्रसन्न हो कर हिंदू जनता की ओर से मालिक और लेखक को स्वर्ण पदक मिले, वहां कुछ लोग इस के एकाध दृश्य से अप्रसन्न भी हुए। वह विवादास्पद विषय था **चेता चमार** का दृश्य। कुछ लोग तो इसे चन्द्र में कलङ्क मानते थे, कुछ शरीर में प्राण। अस्तु, कम्पनी के व्यापारिक उद्देश्यानुसार तीन चार वर्ष एक दलकी इच्छा पूर्ति करके मैंने उस विवादास्पद विषय को **सती गोपी** की कथा से बदल दिया।

इस संकरण की विशेषता

यह है कि उस आन्दोलन में इस नाटक पर जो जो आक्षेप हुए हैं वह आज निर्मूल सिद्ध हुये। "चेता चमार" और "सती गोपी" दोनों ही अपने २ दृश्य सङ्कलन (Synopsis) के साथ यथा स्थानअङ्कित किये गये हैं। अब दोनों दल अपनी अपनी रुचि के अनुसार सामग्री इस एक ही जिल्द में पा सकेंगे।

आज जो लोग इस में व्याकरण की अशुद्धियां दिखाते हैं, छन्दों को ग़लत बताते हैं, घटनाओं को निर्मूल ठहराते हैं,मैं उन्हें छिद्रान्वेषी नहीं कहता बल्कि वो वर्तमान नाटक पद्धतिसे अनभिज्ञ होने के कारण अपने स्थान पर सच्चे हैं। मैं स्वयं उन की कई शंकाओं को यथार्थ और अपने लेख को अशुद्ध मानता हूँ, परन्तु

रङ्गशाला की शैली से विवश होकर उन दोषों को जान कर भी ग्रहण किया है इस लिये एतराज़ का होना कोई दुःख जनक बात नहीं है। जैसे मनहरण, और घनात्तरी पढ़ने की जो ठीक ध्वनि है उस को त्याग दिया है। नहीं त्यागता तो कुदरती बोलचाल को एक अनमेल रागड़े के रगड़े से बिगाड़ बैठता। नाट्यकला की रक्षा के लिये यही उचित मालूम हुआ कि ध्वनि की परवा न की जाय। जिस समय एक दोहे का जन्म हो रहा था तो चौथा चरण अपनी टेढ़ के कारण गर्भ में ही अटक रहा। द्यूतशाला में विदुर जी कहते हैं कि:—

उदय हुआ जब आन कर पूर्व जन्म का पाप
सम्पत सब चम्पत हुई..............................

चौथा चरण शुद्ध मुहावरे के सांचे में ढला हुआ आता था।
..........................."रह गये आप ही आप"

परन्तु इस में दो मात्राएं अधिक थीं, मुहावरे को काट छांट कर लिख दिया:—

...............रहे आप ही आप॥

जिस समय कार्य कर्ताओं के सम्मुख सीन पढ़ा गया तो तीसरे चरण के पढ़ते ही एक रसिक कर्मचारी बोल उठे कि

...........रह गये आप ही आप

मैंने कहा नहीं भाई..............................रहे आप ही आप
वह कहने लगे मुहावरा क्या बिगड़ा मज़ा ही बिगड़ गया, मैंने भी देखा कि बात तो ठीक है जो जोर और रस "रह गये" में

था वह "रहे" में नहीं रहा। सब सम्मति से गलत ही चुलआना स्वीकृत हुआ।

आज कलकत्ते का "मतवाला"—जिसे मैं "मतिवाला" कहता हूँ इसी दोहे पर शंका करता है। और को 'अरु' यद्यपि को 'यदपि' की तरह 'रह गया आपहि आप" लिख दें तो कोई रुकावट नहीं है, परन्तु मैं इस खींचतान की बनिसबत यह कह देना पसन्द करता हूँ कि शंका ठीक है समाधान व्यर्थ।

एक स्थान में विदुर जी ने भीष्मपितामह को "पूज्य पितामह" सम्बोधित किया है। मतवाले के मत में यह अशुद्ध है क्यों कि भीष्म विदुर के चचा थे पिताहम नहीं। लेकिन मतवाला आखिर मतवाला ही तो है कहीं पते की कहता है तो कहीं मजजूब की बड़ भी सही।

अनेक व्यक्ति किसी विशेष कारण से कुछ के कुछ मशहूर हो जाते हैं किसी एक शख्स का नाता, नामका स्थान ले लेता है। मेरी जन्म भूमि में 'उमेद मामा' और 'गणेशी ताऊ' जगत् मामा और जगत् ताऊ थे। बड़ा छोटा, बाप, बेटा, स्त्री, पुरुष,बालक बूढ़े सब उन्हें मामा और ताऊ कहते थे। भइया गणपतराव क्या सबके भइया थे? यदि इसी प्रकार पितामहको नाता नहीं नाम मान लिया जाय तो ऐसी आपत्ति की बात नहीं रहती। कोई न माने तो जहाँ नाटक में और अनेक दोष भरे पड़े हैं यह भी एक सही।

लाख लाञ्छनों के होते हुए भी यदि कोई एक न्यायी हिन्दी-प्रेमी यह कह देगा किः—

"हां नाटकों की काया पलट करने में, "मगर" और "ख़ैर" का स्थान "परन्तु" और "अस्तु" को दिलाने में, अश्लील नाटकों की जड़ काटने में, ऐतिहासिक तथा सामाजिक नाटकों की नींव जमाने में, इस नाटक ने कुछ काम किया है तथा हिन्दी प्रचार में कुछ मदद अवश्य मिली है"

तो इस तुच्छ व्यक्ति के लिये इतना ही काफी है।

एतराज़ों की मुझे ज़रा भी पर्वा नहीं, क्यों कि एतराज़ों से तो वेद भगवान्, कुरान करीम, इञ्जील मुक़द्दस जैसे पवित्र ग्रंथ तक नहीं बचे, यह नाटक विचारा किस शुमार में है। हाँ वास्तवमें इस से हिन्दी की कोई सेवा हो गयी है तो मैं अपने परिश्रम को सफल मानूंगा।

मैं ने हिन्दी में है साहित्य को बदनाम किया।
फिर भी कुछ सोचके खुश हूँ कि कोई काम किया॥

"बेताब"

महाभारत

परिचयार्थ प्रारम्भिक प्रवेश

—❀—

(सूत्रधार अपने मकान में ईश्वरोपासना के साथ नाटक आरम्भ करना चाहता है।)

गाना

सूत्रधार नटी विद्यार्थी वगैरा—

प्रथम "ओ३म" करो उच्चार

जो है आनन्द रूप, सत, चित, नित, निर्विकार। प्रथम०
विश्व सकल नाटक सम, जीव हैं सब नाट्यकार।
रूप कोऊ लेत नाहिं अलग रहत सूत्रधार। प्रथम०
परदे से परख लेत सब क्रिया धन देता सब को।
गिन गिन कर निस दिन कारबार देखभाल कर। प्रथम०

ॐ शान्तिः ! शान्तिः !!! शान्तिः !!!

नटी—ॐ आहा ! यह नाम स्वामी को कैसा भाया है। परमात्मा जाने इसमें क्या चमत्कार समाया है। आर्य पुत्र ! इस ओंकार की कुछ महिमा तो सुनाइये। यह क्या है ? और है भी या नहीं ? अगर है तो कहां रहता है ? यह तो बताइये।

सूत्र०—देवी ! महामंत्र ओ३म् जान, कोई नहीं या सामान,
धिक् हैं वो इन्द्रियां जो तन्मय रहीं नहीं।
रसना वो नहीं जिन ओ३म् रस चाखा नहीं,
आंखें वो नहीं जो याके नेह में बहीं नहीं।
अस्ति और नास्ति के झगड़े हैं अज्ञान रूप,
कोई कहो हां हां या कोई कहो नहीं नहीं।
नारायण जग में है जगत नारायण में,
ढूंढ़िये तो यहीं मिले नहीं तो कहीं नहीं।

नटी—अच्छा स्वामी ! आज रसिक लोगों को नाटक कौनसा दिखाइयेगा ?

सूत्रधार—पार उतरने के लिये ज्यों सागर पार सेतु।
आज "महाभारत" करें, भारत के हित हेतु॥

नटी—तो क्या आदि से अन्तपर्य्यन्त, पूरा महाभारत कीजियेगा ?

सूत्रधार—नहीं, पूरे अठारह पर्व के लिये तो अठारह दिन भी थोड़े हैं। देखने वाले सज्जन विलानागा प्रतिदिन आवें और जागने का कष्ट उठाऐं, यह असम्भव है। इस लिये खिलाड़ियों को समझाओ कि शाखाओं को छोड़कर सीधे मार्ग पर चले जाओ।

नटी—तो आज्ञा (नटी जाना चाहती है, सूत्रधार रोकता है !

सूत्रधार—और सुनो-यह भी ध्यान रहे कि भाषा अपने श्रोता समाज के अनुकूल हो।

नटी—यानी ?

सूत्र०—न ठेठ हिन्दी, न खालिस उर्दू, जबान गोया मिलीजुली हो।
अलग रहे दूध से न मिश्री, डली डली दूध में घुली हो॥

क्योंकि मुख्य उद्देश्य तो मतलब समझाना है न कि भाषा का गौरव दिखाना।

ग़ाफिल पड़े सोते हैं जो बैठे हुए जो मौन हैं,
समझें तो दिलमें जानलें भारत निवासी कौन हैं।
जो वीर थे कायर बने ज्ञानी बने अज्ञान हैं,
यह भी तो हैं भूले हुए किस बाप की सन्तान हैं।
जो कह दिया करके रहे थे बात के कैसे धनी,
छोड़ा नहीं निज धर्म को प्राणों पै चाहे आ बनी।

गाना

सब—भारत में कैसे कैसे हुए वीर।

जिन्होंने आनबान पर, जिन्होंने एकजबान पर तजा शरीर। कहदी जो बात है दम के साथ चाहे जमाना होजाये बेगाना, लाख विपद आन पड़े तो भी रखते थे धीर। भारत निवासी की संपत थी दासी गई वह लड़ाई भिड़ाईमें तमाम हुए, जब धर्म रहित कर्म-रहित शर्म-रहित सारी विभूति हुई अखीर। भारत०

(सब का जाना)

अङ्क १ प्रवेश १

अद्भुत भवन

(मय दानव का बनाया हुआ भवन जिसमें जल की जगह थल और थल की जगह जल, इसी तरह दीवार का दर्वाजा और दर्वाजे की दीवार नजर आती है।)

(युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ में देश देश के राजा महाराजा और रानी महारानियां जमा हैं। मेहमान रानियां यज्ञशाला और भवन को देख कर आनन्द का गीत गा रही हैं।)

गाना

आली छाई आज जगत खुशहाली,
उमड घुमड़ आई घटा पीतवर्ण लिये लाली। आली०
उत्सव की छवि माहीं सबके हैं नैन लगे,
पक्षिन के सब जोड़े शुभ आशिष देन लगे।
निजनिज बोली में, मनहर हैं सुरंग सुमन,
विघ्न हरत, हरियाली। आली०
जलचर थलचर विहंग सब गगनचर,
वृक्षचर, शाखचर, उद्भिज जरायुज्ज सब स्वदेज,
अंडज सब महा मगन मन। आली०

(सत्यभामा और रुक्मणी आती हैं।)

सत्य०—बहन रुक्मणी ! तुम्हें बुरा न मालूम हो तो मैं द्रौपदी से अपने दुःख की दवा पूछूं ?

रुक्मणि—दवा ! दवा तुम से दूर, तुम्हें ऐसा क्या रोग है ?

सत्य०—कुछ नहीं।

रुक्म०—आखिर ?

सत्य०—यही कि तुम्हारी मोहनी सूरत, मोहनी सूरत ने मोहन प्यारे को ऐसा मोह लिया है कि उन्होंने मेरा तो ध्यान ही छोड़ दिया है।

रुक्म०—वाह बहन तुमने तो मेरे मुंह की बात छीन ली, मैं तो कहने ही को थी कि सत्यभामा ! तुम्हारी इन रसीली आंखों ने मुझ पर बड़ा जुल्म किया है।

सत्य०—मेरी आंखों ने ? अजी नारायण नारायण कहो।

गाना

मस्त नहीं अंखियां हमरी कुछ नैन नहीं हमरे मतवारे।
सुन्दर सूर सिपाहि नहीं, नहिं काजलसे हथियार संवारे॥
चञ्चल या चितचोर नहीं मृगलालको नाहिं लजावन हारे।
ये गुन हैं इन नैननमें फिर श्याम बने न गुलाम तिहारे॥

गाना

रुक्म०—दूध समान अमोल कपोल तो हंस समान हैं नन्द दुलारे,
काह न हंस निवास करें निस वासर क्षीर-समुद्र किनारे।
श्याम भये घनश्याम पधारत आपके मन्दिर जात सकारे,
लाख करें उठना उठना उठने कब देत हैं नैन तिहारे।

सत्य०—धन्य हो, धन्य हो, तुम न कहोगी तो कहेगा कौन, कौन लगायगा कटे पर नौन।

रुक्म०—अजी यह सब बन आये की बात है, वर्ना मुझे तो जैसा दिन है वैसी ही रात है।

गुजर जाता है बे दर्शन के हफ्ता भी महीना भी,
जो आते हैं तो रहते तरसते लब भी सीना भी।
इधर आये इधर उट्ठे निहायत इज्तराबीसे,
निगोड़ा सूखने पाता नहीं मुंह से पसीना भी।

सत्य०—अच्छा अच्छा खूब बनालो, जो कुछ मुझ पर गुजरती है उसे अपने ऊपर डालकर दोहरालो।

रुक्म०—तुम पर क्या गुजरती है ?

सत्य०—मैं यह तो नहीं कहती कि मनमोहन प्यारे कभी मेरे भवन में आते ही नहीं। नहीं आते हैं मगर—

वो क्या करें जब ध्यान तुम्हारा नहीं जाता,
पहलू में मेरे पल भी गुजारा नहीं जाता।
आते हैं तो आते ही चले जाते हैं फौरन,
कांधे से दुपट्टा भी उतारा नहीं जाता।

रुक्म०—सच है दुनिया अपने दुःख को औरों से अधिक और सुख को हमेशा कम कहती है। धनी लोगों को धन के होते हुये भी और धन की इच्छा बनी रहती है।

सत्य०—तुम हजार कहो परन्तु मैं तुम्हारे इस मोह जाल से (रुक्मणी की जुल्फों को छू कर) डरती हूँ। इस लिये वह द्रोपदी जी आती हैं उनसे उपाय दर्यापत करती हूँ।

(द्रोपदी का आना)

सत्य० रुक्मणि—पधारिये ! पधारिये !!

सत्य०—मरीजे नातवां तक चारागर बे इल्तमास आया।
ज़हे किस्मत २ कुआं प्यासे के पास आया॥

द्रोपदी—ऐसी क्या बात है जिसपर तारीफों के पुल बांधे जाते हैं।

गाना।

सत्य०—कोई प्रीति की रीति बता दो नई।
करके जतन मैं तो हार गई॥ कोई०
छलछन्द हैं छैल की नस नस में,
नित खात हैं झूंठी मेरी कस्में।
मन डाल के सौतन के बस में,
सुध श्याम ने मोरी बिसार दई।
तज मान गुमान वह आन मिले॥ कोई०

रुक्म०—बोहतान हैं यह इनकी बतियां,
रस रङ्ग में काटत हैं रतियां।
नित श्याम लगावत हैं छतियां,
यों ही रात गुजारत कई कई।
सच बात है जो यह गिला मैं करू ॥ कोई०

द्रोपदी—जो चाहो कि प्रीतम हो अपना,
पति नाम की माला सदा जपना।
नहीं गैर का देखो कभी सपना,
तब जानों यह देह पवित्र भई।
इसी मोहनी मन्त्र का जाप करो॥ कोई०

सत्य०—नहीं लाभ समय कुसमय से कभी,
ढिग आत न इनहीं के भय से कभी।
सर बाँह पे डाल के ऐसे कभी,
न निगाह निगाह में डाल दई।
मुख चुम्बन की नहिं चाट चखी॥ कोई०

रुक्म०—भला छोड़ के मिसरी भली से भली,
कभी खायगा क्या कोई गुड़की डली।
ये हैं कोमलता की सुरङ्ग कली,
मैं कटेली हूँ कंटकी सूल मयी।
मोहे काहे लगाएंगे श्याम गले॥ कोई०

द्रोपदी—जिसकी है पति प्रति प्रीति घनी,
वहि साजन की है खरी सजनी।
उसी का दिन है उसी की रजनी,
जिन जान बलमुआ पे वार दई।
वही भाग्य वती है सुहागवती॥ कोई०

(श्रीकृष्ण महाराज आते हैं इन्हें देखकर द्रोपदी चल देती है)

कृष्ण—हो रहे हैं आज तो आपस में झगड़े प्यार के,
कौन समझाता है देखें अर्थ इस तकरार के।
प्रेम से मन्दिर में आना है जिसे झेंपे नहीं,
जल्द आजाये यह दोनों पट खुले हैं द्वार के।

सत्य०—वाह दखल देना पराई बातों में।
हो न जाये लड़ाई बातों में॥

कृष्ण—अजी लड़लो झगड़लो परन्तु वह प्रीति की रीति तो सीखलो।

रुक्मणी—इन्हीं को सिखाइये इसकी जरूरत इन्हीं को हर घड़ी रहती है।

सत्य०—सच है क्योंकि तुम्हारी सेवा में तो प्रीति पीतम को लिये हर वक्त खड़ी रहती है।

रुक्म०—और तुम्हारे पास तक नहीं झांकती? गजब की बात है—
गिला तकदीर का है बे सबब तकदीर वालों को,
यह किस का इत्र है सूंघो जरा इनके दुशालों को।
दुपट्टा पोंछता रहता है हर दम किस के गालों को,
किसे सौ बार दिन में बांधना पड़ता है बालों को।
उड़ा करती हैं अक्सर धज्जियाँ किसके दुकूलों की।
उतरती है कहाँ मसली हुई मालाऐं फूलों की।

सत्य०—यह सब बातों की सफ़ाई है, सफ़ाई वर्ना मेरे दिल से पूछो मैं ऐसी पटरानी होने से बाज आई, बहन! अब तो तुम मुझे अपनी दासी बना लो।
क्योंकि हिस्से में तुम्हारे आ चुके हैं सात दिन।
कुछ न होगा श्याम के दर्शन तो होगा रात दिन॥

कृष्ण—यह तुम्हारा जो कुछ वाद विवाद है वह सब बेहद प्रेम का प्रसाद है।
पल भी तुम्हें जुदाई में हमसर हैं साल के।
लेकिन पलों से कम हैं महीने विलास के॥

गाना

कृष्ण--सुख में सब आयु गुज़ार सकें दुख एक घड़ी जब पावत हैं
अकुलावत हैं घबरावत हैं पलको फिर कल्प बतावत हैं
मन प्रीत ने जीतलियो जिनको अनरीतिके गित वो गावत हैं
कुछ प्रेमके जोशमें होश नहीं बस और को दोष लगावत हैं

सत्य रुकमणि--वाह जी यह बतियां तेहारी, हैं घतियां बिहारी
दोनो का मन समझाना, पूरे नट खट हो कान्हा कैसी
हुशियारी। ये बतियां०

कृष्ण--मानों जी मोरी मानों, मानो जी गोरी मानों।

दोनों--बातें यह कोरी मानो।

कृष्ण--दोनों की दोनों भोली हैं।

दोनों--जाहिर बातें अनमोली हैं, लेकिन अन्दर से पोली हैं।
जायें बलिहारी। यह बतियाँ ॥

(सब चले जाते हैं भीमसेन दुर्योधन का अपने नवीन मकान की सेर कराता है। इस मुकाम पर भी लाता है शकुनी साथ है)

भीम--यह भवन भी मयदानव की दस्तकारी है।

शकुनी --(बहकाने के तौर पर दुर्योधन से) यह दिखाना भलाना आपके जलाने के लिये चिंनगारी है।

दुर्योधन--(जवाबन शकुनी से) मैं समझता हूँ यह दर परदा दिलाजारी है, सैर कराना छुपी कटारी है।

(भीम से) वाह २ यहाँ जो चीज है बड़ी ही प्यारी है हर एक वस्तु शोभायमान है।

(पोश दा तौर पर) यह भवन नहीं पाण्डवों की ख्वारी का सामान है (द्रोपदी वगैरह शहनशीं से देख रहे हैं)

भीम--वो रास्ता उधर से घूम कर यज्ञशाला को जाता है।

शकुनी--(भड़काकर) देखो किस घमण्ड से रास्ता दिखाता है।

दुर्योधन—हाँ मेरे सामने शेख़ी जताता है (ज़ाहिर) ईश्वर जाने इसका नक्शा, इसका काम मुझे बहुत ही भाता है।

द्रोपदी—(अपनी हमजोलियों से) यह जो कुछ तारीफ़ें इस मकान की हैं, दिल की नहीं ज़बान की हैं।

छुपते नहीं छुपाए कभी नेको बद के तौर।
आँखों से आशकार हैं देखो हसद के तौर॥

भीम—देखिए यह चबूतरा देखने में बिल्कुल हक़ीर है मगर इस के काम पर गौर कीजिएगा तो मालूम होगा.... ....

दुर्योधन—कि बे नज़ीर है।

शकुनी—(दुर्योधन से) गोया इनके दिल से आपने यह चीज़ें कभी नहीं देखीं, दुर्योधन राजा नहीं कोई कँगाल फ़क़ीर है।

दुर्योधन—(हौज़नमा चबूतरे को देखकर) अहा ! यह जल कैसा निर्मल बह रहा है।

शकुनी—जो ज़बाने हाल से कह रहा है कि देखें पहले कौन मेरी स्वच्छता की बहार लूटे।

दुर्योधन—(अपने दिलसे) हे भगवान इस सम्पत्ति पर बिजलीटूटे (दामन संभाल कर पानी में उतरना चाहता है)

भीम—(हँसकर) हैं ! यह आप दामन क्यूं संभालते हैं ? (शकुनी से) शकुनी जी आप जूता और जुर्राब क्यूं निकालते हैं ?

दु०—अजी ज़रा इस कुंड की सैर करेंगे।

द्रोपदी—(ऊपर बैठी हुई) नहीं तो चुल्लू भर पानी में डूब मरेंगे।

भीम—(हँसकर) वाह भाई साहब क्या आज आँखों में सुरमा नहीं लगाया जो पत्थर के फ़र्श को पानी का कुंड बताया।

पानी की लहर कब है ये पत्थर की चीन है।
समझे के हो इसको हौज़ यह सूखी ज़मीन है॥

दु०—(खिसियाना होकर) कमाल है।
श०—वाक़ई कमाल है।
दु०—(बखुद) इक मकान की सैर भी एक वबाल है।
भीम—चलिए अब ज़रा उधर की भी सैर करें।
दु० - आइये।
(दुर्योधन आगे बढ़ते ही धम से पानी में गिरता है भीम कहकहा लगाता है। द्रोपदी वगैरह भी हँस पड़ती हैं)
भीम—क्यूं साहब क्या आज गोते खाने की ही ठानी है ये तो साफ़ नज़र आ रहा है कि पानी है।
द्रोपदी—चकाचौंध से भवन की बिगड़ गया सब तौर।
अन्धे की औलाद है सूझे क्यूं कर ठौर॥
दु०—मुझे कहत है द्रोपदी अन्धे की औलाद ?
श०—हाँ राजन् इस यज्ञमें है अपमान प्रसाद॥
हँसी उड़ाये आपकी ये गरूर का काम
दु०—बदला लूं इस हँसी का तो दुर्योधन नाम
भीम—अब ख़ामख़ाह ख़फ़ीफ़ होने से क्या फायदा है। तबीअत को सम्भालिए चलिये कपड़े बदल डालिये।
(दीवार को दर्वाजा समझ कर दुर्योधन आगे बढ़ता है और टक्कर लगती है। फिर हँसी उड़ती है)
दु०—या मेरे कर्तार यह दरवाजा है या दीवार ?
भीम—अजी इधर से निकल आइये।
दु०—उधर से कहाँ आऊँ दरवाज़ा तो है ही नहीं क्या दीवार में घुस जाऊँ ?
भीम—अजी भाई साहब कहते हुए तो शरमाइये, खुले हुए दरवाजे को दीवार न बताइये, लीजिये मैं आगे चलता हूँ अब तो आइए— (सब का जाना)

—❀—

अङ्क १ प्रवेश २

उक्त भवन का दूसरा भाग

(शिशुपाल निहायत गुस्से में दाखिल होता है। युधिष्ठिर और अर्जुन समझाते आते हैं।)

शिशुपाल—नहीं तुम अज्ञानी हो, मूर्ख हो, खुशामदी हो।

युधिष्ठिर—शान्त, शान्त, चन्देरी के भूपाल, शिशुपाल जरा शान्त।

शिशुपाल—तुम्हारे यज्ञ में, तुम्हारी सभा में, तुम्हारे मकान में बैठने वाले पर लानत है, तुम जैसे धूर्त अन्यायी पक्ष-पातियों का साथ देने वाले पर लानत है।

युधि०—तेजवान नरेश! जरा धीरज धारण करके इसका कारण तो....

शिशुपाल—तुमने क्या समझकर उस छिछोर छोरे कृष्ण को पहला तिलक चढ़ाया? क्या समझकर इतने राजाओं में उसका रुतबा बढ़ाया?

किया यह लाज खोकर आज उलटा काम किस बल पर?
बनाया तुमने इक पत्थर को शालिग्राम किस बल पर?

अर्जुन—परख सकती नहीं रत्नों को हर इन्सान की आंखें।
दिखाई ब्रह्म क्या दे, हों न जब तक ज्ञान की आंखें॥

शिशुपाल—वह ऐसा कहां का छत्रपति महाराजा है?

अर्जुन—तीनों लोक का।

शिशुपाल—हरगिज नहीं, गोकुल का ग्वालिया किसी देश का राजा नहीं है।

अर्जुन—सच है, राजा होना तो एक सामान्य बात है, वो तो परमब्रह्म है।

शिशुपाल—मूर्खों का बनाया हुआ।

अर्जुन—नहीं, वेद और शास्त्रों में गाया हुआ।

शिशु०—नहीं, वेदों का ईश्वर निराकार है और यह शरीर धारी, परमात्मा शुद्ध, पवित्र न्यायकारी है और यह व्यभिचारी, वह अजन्मा है और इसने जन्म लिया है, वह अजर, अमर अभय है और इसने जरासन्ध के आगे भय किया है, वो अनादि है और यह अनादि नहीं है, वह सब जगह मौजूद है और ये केवल यहीं है।

युधिष्ठिर—जिस जगदीश्वर ने बन कर नरसिंह,
हिर्नाकुस मार प्रह्लादजी को तारा है ।
जिन क्षीर सागर में कछुवे का रूप लेके,
पीठपे सुमेरु जैसे शैल को सहारा है ।
जिन तीन डगनमें नाप लिये तीन लोक,
जिन रामरूप धार रावण को मारा है ।
उसी परमेश्वर ने पापियों के मारने को,
भक्त के उबारने को कृष्ण रूप धारा है ।

शिशुपाल—इसका नाम अंधी श्रद्धा है ।
गढ़े में भेड़ भोली भेड़के पीछे चली है यह ।
फिटकरीको समझतेहो कि मिसरी की डली है यह ॥
अरे मूर्खो ! अगर किसी बुजुर्ग का पूजन लाजिम था तो उसी के बाप वसुदेव, राजा द्रुपद, राजा भीष्म का पूजन किया होता, गुरुकी पूजा योग्य थी तो द्रोणाचार्य को पूजा होता, ऋत्वज को मान देना था तो व्यासजी मौजूद थे, वीर बहादुरका काम था तो अश्वत्थामा दुर्योधन कृपाचार्य जैसे शूर मौजूद थे ।

युधिष्ठिर--परन्तु सारे गुण अकेले कृष्ण में मौजूद हैं तो फिर....

शिशुपाल—कृष्ण में ? ग्वालिनों से भीख मांग २ कर दही दूध खाने वाले कृष्ण में ? कम्बल की घूघी में गोवें चराने

वाले कृष्ण में ? जो न पंडित है, न छत्रधारी है, न राजा है न आचारी है, न शूर है, न वीर है, न बुजुर्ग है, न गम्भीर है, उसका पूजन ? तुम्हारी मूर्खता से मालूम हो गया कि तुम नष्ट होने वाले हो तुम्हारी बुद्धि मन्द है तुम्हें हीजड़े का विवाह करना पसन्द है—

अर्जुन—ओह ! दुष्ट ने वेढब जवान खोली, बस, मेहमानदारी और सभ्यता की हद होली।

युधिष्ठिर—हे राजन् ! निश्चय तुमने श्रीकृष्ण को नहीं पहचाना। जो तीन लोक का स्वामी है ·····

शिशुपाल—वो बड़ा बेशर्म है बड़ा बेहया है, मैं उसे इतना बुरा भला कह रहा हूँ मगर चुप बैठा सुन रहा है न शर्माता है, न गुस्सा आता है, मैं उसे गालियां देता हूँ और वह गिनता जाता है।

युधिष्ठिर—यही मैं भी कहता हूं कि कहीं पूरी सौ (१००) गालियाँ न दे डालना, जो कुछ हुआ सो हुआ, अब कोई कठोर बचन मुख से न निकालना।

शिशुपाल—वर्ना क्या होगा ?

अर्जुन—बुरा होगा, आपका सर तन से जुदा होगा।

शिशुपाल—आह ! उस दुराचारी के कारण ? भिकारी मुरारी के कारण ? मैं अभी उसका सर उड़ाता हूँ परलोक पहुँचाता हूं।

(गुस्से में चला जाता है।)

युधिष्ठिर—जो इसकी मौत है आता है यह उसके मिटाने को।
चला है घी उबलकर आज अग्नी के बुझाने को॥

(शिशुपाल के पीछे अर्जुन और युधिष्ठिर जाते हैं कृष्ण महाराज शिशुपाल का सर काटकर लाते हैं।)

कृ०—बस ।

अब नहीं दुनियाँ में बाक़ी दुष्ट तेरा अन्न जल ।
हो चुकीं सौ गोलियाँ पूरी बस अब चोला बदल ॥

वीर सहदेव !

स०—(आकर) महाराज ।

कृ०—लो यह सर और धड़ पड़ा है इसे श्मशान में उठा ले जाओ और घी, चन्दन, कपूर इत्यादि के साथ जलाओ ।

स०—महाराज ! ऐसे पापी को तो कूड़ी पर फिकवाना चाहिए ऐसी अवित्र लाश को पज़ावे में जलाना चाहिए ।

कृ०—नहीं,नहीं, कभी नहीं, माना कि यह सर दुश्मन का सर है, वह शव शत्रु का है इसे चाहे कूड़ा पड़ फिंकवायें या पजावे में जलायें, यह बात हमारे हाथ है, परन्तु नहीं, मुर्दे को उत्तम २ सुगन्धियों के साथ जलाना यह सुलूक मुर्दे के साथ नहीं बल्कि जीने वालों के साथ है ।

स०—जो आज्ञा होगी वही किया जायगा । (जाना)

(द्रोपदी सत्यभामा और रुक्मणी वगैरह का
आना और दर्य्यांफ्त करना)

द्रो०—भाई यह आप की उंगली से खून कैसा निकलता है ?

कृ०—शिशुपाल का सर काटते समय निगाह हट गई थी उसी समय यह उङ्गली जरा कट गई थी ।

सत्य०—धज्जी तो कोई नहीं है ।

रु०—मैं लाती हूँ ।

द्रो०—अजी कहाँ से लाती हो, कहाँ जाती हो, यह लो -

(अपनी साड़ी फाड़ डालती है)

कृ०—हैं ! हैं !! यह तो नई साड़ी है ।

द्रो०—साड़ी क्या इस कोमल अङ्ग से भी प्यारी है ?

लहू इस हाथ से टपके तो चूल्हे में गई साड़ी।
फ़क़त इक बून्द पर कुर्बान हैं लाखों नई साड़ी॥
न यह दिल निर्दयी है और न है ये निर्दयी साड़ी।
बनी फटनेसे अब आँखों का सुरमा सुरमई साड़ी॥
अगर दरकार फाहे के लिये हो खाल गर्दन की।
तो हाज़िर है ये किस्मत खोलिये फिलहाल गर्दनकी॥

(सर झुका देती है)

कृ०—द्रौपदी ! भाव सच्चा काम मरहम से जियादा कर गया !
जख्म क्या, दिल भी मेरा तेरे वचन से भर गया।
मैं इस समय न उङ्गली को देखता न साड़ी को।

द्रौ०—तो महाराज क्या देखते हो ?

कृ०—है नजर श्रद्धा पे, और इस प्रेम पर, इस मान पर।
कम हैं इस धज्जी से जो मैं थान चुन दूं थान पर॥
भाव बिन थूकूं नहीं गाड़ी भरे सामान पर।
रीझ जाता है मगर दिल मान के इक पान पर॥
बन्ध गया मैं इनमें, यह डूबे हुए हैं प्यार में।
लाख जञ्जीरें हैं इस धज्जी के इक इक तार में॥

द्रौ०—प्यारे भाई घनश्याम आपके जो आवें काम,
काढ़ दूं नसें भी ये तो रेशम के तागे हैं।
तागे भी पुराने इन्हें दुरलभ माने क्या ये,
दुल्हन के जोड़े हैं या दुलहा के बागे हैं।
मैंने कहाँ फाड़ा चीर, तागे देखते ही पीर,
होकर अधीर मेरा चीर छोड़ भागे हैं।
वो तो हैं अभागे जो कि बढ़े नहीं आगे,
कटी उंगली जो लागे भाग उन्हीं के जागे हैं।

कृ०—तोते को पढ़ावन में गणिका ने बान्ध लिया,
बाँध लिया कुंजर ने प्रेम की पुकारों में।

मुट्ठी भर चावल में सुदामा ने बाँध लिया,
कुब्जा ने चन्दन और फूलन के हारों में ॥
माखन के चाखन में गोपियों ने बाँध लिया,
छछिया ही छाछ छीन नाचे ब्रज नारों में।
भिल्लिनी ने बाँध लिया झूटे कूटे बेरन में,
द्रोपदी ने बाँध लिया कच्चे चार तारों में ॥

बस, आज मैं इस धज्जी का कर्जदार हो चुका, अब इक़रार करता हूँ कि इस क़र्ज़ का हब्बा २ दूंगा, अगर दयानतदार क़र्जदार हूँ तो तुम्हारी सखी जरूरत के वक्त तागे—तागे के बदले साड़ियों के ढेर लगा दूंगा।

गाना

कृ०—तोरी इतनी चुनरिया ने मन बस कीन्हों।
मोरी बाँध के उंगरिया मोहे बाँध लीन्हों ॥ तोरी० ॥
द्रो०—गिनती के हैं यह नौ दस तागे।
भाव बढ़ा जो घाव पे लागे।
कृ०—लाख चीर लाके धरूं सहस बसन
मखमल अतलस कुछ भी नहीं इनके आगे ॥ तोरी ॥

गाना

द्रोपदी—बिमल कमल लाग भाग जागे, हां हां हां हां हां इनके
सबसे रहे खुशनसीब तागे, हां हां हां हां हां सच है,
गोवर्द्धन धार सकी अब कट कर खून भरी।
देखो सखी खेल करत मोहन की उंगली,
तन मन कुर्बान करूं नंदलाल हां हां हां हां हां सच है।

दुर्योधन का महल

(दुर्योधन अपघात करना चाहता है। जहर का प्याला लिये दाखिल होता है।)

दुर्योधन—बुद्धि हुई अति दुर्बल मेरी, अबहूँ सरन हलाहल तेरी।
तू बस तू है मित्र पियारा, या है यह खांडे की धारा॥
जिन्दगी और ऐसी निर्लज्ज! जिन्दगी कटे तो क्यूं कर कटे। दुश्मनों का खजाना दोनों हाथ से लुटाऊँ और एक हब्बा न घटे। टूट पड़ ओ तारामंडल! टूट पड़! ऐ जहरे कातिल! इस मिट्टी के घरौंदे को बिगाड़ दे। इस अपमान पाई हुई बस्ती का उजाड़ दे।

इस मकां में होके दाखिल जीव की बस्ती मिटा,
जान, दिल, जो सामने आये जबरदस्ती मिटा।
मैं तुझे बाकी न रक्खूं तू न रख बाकी मुझे,
मैं तेरी हस्ती मिटाऊं तू मेरी हस्ती मिटा।

(जहर पीना चाहता है फौरन शकुनी धृतराष्ट्र को लेकर आता है और दुर्योधन का हाथ थाम लेता है।)

शकुनी—हैं हैं राजन! इतनी सी बात और उस पर अपघात!

धृतराष्ट्र—यही तो मैं भी कहता हूँ।

दुर्योधन—कौन पिताजी? आप यहां कैसे पधारे?

धृतराष्ट्र—यही तो मैं भी कहता हूँ। मैंने सुना है कि तूने अपने चहरे की लाली ईर्ष्या और द्वेष के हाथों बेच डाली?

दुर्योधन—हां पिताजी महाराज।

श्वेत पीत धन* देख उड़ी चेहरे की लाली।
लाली की हर रेख रैन थी काली काली॥

---

*श्वेत पीत धन=चाँदी सोने के सिक्के।

वह सम्पत भरपूर कि जिसकी ज्योति निराली।
अंधियारी हुई दूर खिली जब चन्द्र उजाली॥

धृतराष्ट्र--तू नादान है,अज्ञान है--मेरे बच्चे! युधिष्ठिर कोई ग़ैर नहीं है, उनसे हमारा किसी तरह का बैर नहीं है। यज्ञ में गया और शान्ति के बदले चिन्ता मोल लाया, वह भी अथाह लाया, अतोल लाया, यह न समझा—

चिन्ता ज्वाल शरीर बन दावा लगलग जाय।
प्रकट धुआं दीखे नहीं उर अन्तर धुंधुवाय॥
उर अन्तर धुन्धुवाय जरे ज्यों कांच की भट्टी।
लहू मांस हो भस्म रहे बस हाड़ की टट्टी॥
तेज नष्ट हो जाय बढ़े दिन रैन मलिन्ता।
जीते को खाजाय डंकिनी है यह चिन्ता॥

दुर्योधन—हां, पिता जी! अगर आप कुछ देख सकते तो पाण्डवों की इज्जत सम्पत इतनी देखते कि ठण्डे कलेजे से उसे कभी न देख सकते, आज वह दस हजार सन्यासियों को हर रोज सोने के थालों में भोजन कराके खाता है और अट्ठासी हजार ब्राह्मणों का कुन्बा उसके भण्डार से अन्न पाता है। इनके जैसा खजाना मेरे स्वप्न में भी नहीं आया, मैंने बहुत लुटाया, बहुत लुटाया फिर भी उसका अन्त न पाया।

धृतराष्ट्र—यही तो मैं भी कहता हूँ! परन्तु—

खाली जिनके हाथ हैं उनकी है यह बात।
तू राजा है छत्रपति सब सुख हैं दिन रात॥
सब सुख हैं दिन रात लोभ फिर भी है जर का।
जर को समझ न मित्र,मित्र यह है दम भरका॥
रहट की घड़िया जान साहुकारी कंगाली।
दम भरमें भर पूर होत, दम भर में खाली॥

दुर्योधन—अच्छा तो फिर आप ही बताइये कि यह दुःख क्योंकर सहा जाय। जिस तरह तमाम नदियाँ और नाले समुद्र ही को भरने वाले हैं, इसी तरह सब देश के राजाओं ने बड़े २ क़ीमती जवाहिरात ला-लाकर पाण्डवों के घर में डाले हैं।

धृतराष्ट्र—यही तो मैं भी कहता हूँ, कि डाले हैं तो क्या हुआ—

मुबारक उनको उनका धन, मुबारक फूलना फलना।
कहाँ की बुद्धिमानी है पराई आग में जलना॥

दुर्योधन—नहीं पिता जी! आप मुझे भुलाते हैं, यह तो जग-जाहिर बात है कि जो लोग अपनी उन्नति के लिये हाथ पाऊं हिलाते हैं वही अपनी कामनाओं को पाते हैं। जिन राजाओं के हृदय में संतोष है वह मिट जाते हैं।

राजा या विद्यार्थी, करें अगर संतोष।
बढ़े नहीं, दिन दिन घटे, धन विद्या का कोष॥

धृतराष्ट्र—यही तो मैं भी कहता हूँ। निस्संदेह यह बचन नीति के अनुसार है परन्तु इससे भी ख़बरदार है—

रोटी की परछाहिं पर, गया लपक कर श्वान।
डूब गया जल धार में, तजे लोभ बस प्रान॥

दुर्योधन—पिताजी! अगर इतना ही होता तो मैं कुछ न कहता। इस दुःख को सहता और संतोष से बैठ रहता, परन्तु शोक तो यह है कि भीमसेन ने मेरी हँसी उड़ाई है औरतों के ठट्ठों ने मेरी यह दुर्गति बनाई है।

धृतराष्ट्र—ये सब तेरे मन का विकार है। हंसी दिल्लगी तो बराबर वालों में हुआ ही करती है, वरना भीमसेन आख़िर तेरा भाई है।

श०—अगर श्रीमान् आज्ञा दें तो मैं एक सलाह निवेदन करूं और सलाह भी कैसी?

नेक सलाह विवेक भरी पल मांह युधिष्ठिर का धन लूटे।
या पर भी हमको जगमें असमर्थ कहे नहिं कोई न भूटे॥
डारकी डारहि डार रहे उस डार से एक शिकार न छूटे।
तीर नहीं शमशीर नहीं बस साँप मरे लठिया नहिं टूटे॥

धृ०—यही तो मैं भी कहता हूँ। अगर ऐसी है कोई तदबीर तो बोल बोल जल्द बोल, शकुनी वीर।

श०—आप जानते हैं कि युधिष्ठिर को जुए का शौक महान है, परन्तु वह जुए की चालों से अज्ञान है।

दु०—अजी बिलकुल अनाड़ी है।

श०—और सेवक इस विद्या में निपुण लाजवाब खिलाड़ी है। महाराज! मैं अगरचे मैदान जंग में पाण्डवों पर गालिब नहीं आ सकता, लेकिन चौसर के मैदान में लोहे के नहीं, केवल हाथी दाँत के हथियारों से-जरूर फ़तह पा सकता हूँ क्योंकि पासा मेरा धनुष है और गोट मेरा बान है, जिस पर मुझे हर तरह इत्मीनान है। आप निश्चय समझें कि जहां चौसर का समाज है वहाँ चारों दिशाओं में मेरा राज है।

मिट जाएगा दुख दर्द सब इनका, जरा हाथ फेर में।
होगा इधर से उधर सारा माल इतना देर में॥

धृ०—जुए के द्वारा? उधर का माल इधर होगा, यही मतलब है न तुम्हारा?

श० दु०—जी।

धृ०—परन्तु जुए के हीले से?

श० दु०—जी, जी।

धृ०—यही तो मैं भी कहता हूँ, कि एक नीच कर्म के वसीले से, धिक्कार है इस सलाह पर, लानत है तेरी नीयत और निगाह पर।

जड़ है जुआ कुकर्म की दुराचार का यार है।
इसमें हारे हार है जीते भी है हार॥
जीते भी है हार जुआ अपमान करावे।
धीर, धाम, धन धान्य, धरणि, धी, धर्म, हरावे॥
चोरी, जारी, खून, तीन तापों की जड़ है।
जुआ नाश का मूल जुआ पापों की जड़ है॥

दु०—अगर इस सलाह पर लानत है तो मेरे लिये जीने का कोई उपाय नहीं है; बेटे का दाह कर्म करने के लिये चिता तैयार कराइये, अरथी बनाइये, अब बेकार जीना है। बस यह कटारी है और मेरा सीन है।

धृ०—अरे ठहर, ठहर, हठीले ! क्या कह गया ? जरा धीरज धर, धीरज धर, सावधानी से अपना मतलब बयान कर।

दु०—मतलब यही है कि पाण्डवों की चढ़ती बढ़ती मुझे गवारा नहीं है।

धृ०—यही तो मैं भी कहता हूँ मेरी आँखों के तारे मेरी जिन्दगी के सहारे, तू जो कहेगा मैं मन्जूर करूंगा। तेरा दुःख दूर करूंगा। चलो मैं विदुर जी को युधिष्ठिर के पास भेजता हूँ, वह उन्हें बुला लायेंगे और तुम सेवकों को हुक्म दो वो जुए के लिये मण्डप सजायेंगे।

(सब का जाना)

अङ्क १ प्रवेश ४

द्यूतशाला

गाना और नाच

मण्डप यह रच्यो अद्भुत छवि अति विशाल।
तोरण की फबन देखन मन मोहै॥ मण्डप०॥
जिमि सुरपुर इन्द्रलोक, पावन है अशोक।
द्वार द्वार पर मालायें लटकाईं॥ मण्डप०॥
हिल हिल बल खात है, मनमें अठलाती हैं।
आज जिया उमंग भारी सब को है॥ मण्डप०॥

(पाँचों पाण्डव विदुर जी के साथ आते हैं और करीने से अपने अपने आसन पर बैठते हैं, फिर धृतराष्ट्र को दुर्योधन और शकुनी वगैरह लाते हैं)

गाना

मुरली बजा के सांवरिया ने मेरा मन मोह लिया।
ठाढ़ी चित्रसम सब व्रजबाला, देह गेह की।
सुध कुछ नाहीं, चीर उड़ा अब कौन संभाले।
हर हरकत मन हर गत ने मन मोह लिया॥

श०—महाराजाधिराज श्री युधिष्ठिर महाराज! आज का दिन हमारे सौभाग्य का है और महा आनन्ददायी है क्योंकि आपने यहाँ पधार कर इस सभा की शोभा बढ़ाई है। सभा का मुख्य उद्देश्य केवल इतना ही है कि कौरव और पाण्डव दोनों मिलकर घड़ी दो घड़ी पासों से दिल लगायें, चौसर पर गोटों की चालों से जी बहलायें और आनन्द बढ़ाने के लिए कुछ कुछ दांव भी लगायें।

यु०—मैं विदुर जी महाराज की ज़बानी सभा का उद्देश्य सुन चुका हूं, निश्चय जुआ नाश का मूल, धर्म और समाज के प्रतिकूल है। जुआ बुद्धि को बिगाड़ देता है, जुआ सुमति और सम्पत्ति के पौदे की जड़ उखाड़ देता है। जुए ने बड़े-बड़े ख़ानदान तबाह किये हैं, जुए ने बड़े-बड़े पाप और बड़े-बड़े गुनाह किये हैं।

धृ०—यही तो मैं भी कहता हूँ। मैंने भी दुर्योधन को इसी प्रकार बहुत कुछ समझाया, परन्तु उसकी समझमें कुछ न आया।

श०—क्या फिर पलटा खाया। सँभालना कहीं फिर न जायें।

यु०—मैं जुए को अन्तःकरण से धिक्कारता हूँ।

धृत०—यही तो मैं भी कहता हूँ, कि युधिष्ठिर जुए को धिक्करता है।

युधिष्ठिर—परन्तु आपका भतीजा सिर्फ आपका हुक्म सरपर धारता है जो इस नीच दंगल में अपने आप को उतारता है। कहिये इस समागम में मेरा जुआ किसके साथ होगा ?

दुर्योधन—मेरा धन होगा और मेरी तरफ से मामा शकुनी का हाथ होगा।

अर्जुन—एक का माल एक की चाल।

भीम—इसमें भी है कोई न कोई जाल।

युधिष्ठिर—परवा नहीं आइये ये सहस्र मुद्रा मेरा धन है। इसकी बराबर धन लगाइये।

दुर्योधन—मंजूर है (एक दो दफा पासे डाले जाते हैं)

शकुनी—देखिये नौ और तीन बारह, और छः अठारह, यह दाँव तो मैं जीता।

युधि०—तो मैंने अपना अनमोल मणियों से भरा हुआ हार दाँव पर लगाया।

अर्जुन—जुए का है चस्का भारी। दूना खेले हारा ज्वारी॥

शकुनी—राजन ! अबके पासे हैं तुम्हारे, यह दाँव महाराजा दुर्योधन हारे।

विदुर—जिसे चाहे जितादे तू तेरे कहने में पासे हैं।
जिता देना कभी, ये ज्वारियों के दम दिलासे हैं॥

दुर्यो०—लीजिये अब मैं अपने जवाहिरात दाँव पर लगाता हूँ।

युधि०—लगाइये क्या मैं इनसे घबराता हूँ। मैं इनके मुकाबिले में अपने रथ, घोड़े, हाथी, फौज नकदी और सब भाइयों के जेवर लगाता हूँ।

अर्जुन—अब कुछ सूझेगा नहीं, इनको ढंग कुढंग।
जैसे काली सत में, काले हैं सब रंग॥

शकुनी—लीजिये यह दाँव मेरा है।

विदुर—उदय हुआ जब आनकर पूर्व जन्म का पाप।
सम्पत सब चम्पत हुई रह गये आपहि आप॥

भीष्मपितामह—धृतराष्ट्र ! तुमने बहुत बुरा किया जो कौरव और पाण्डवों को जुआ खेलने का हुक्म दिया।

धृत० यही तो मैं भी कहता हूं, परन्तु क्या करूं ? इनके समझाने से चुप रहता हूँ।

भीष्म—मैं बड़ी देर से देख रहा हूँ कि इस अधम कर्म के प्रभाव से महात्मा विदुर को बड़ा मलाल हो रहा है इस घोर दुःख से इनके हृदय का बुरा हाल हो रहा है। अब भी इस खेल को बन्द करो और जो कुछ बिदुर जी कहें उसे कल्याणकारी बचन समझ कर पसन्द करो।

विदुर—पूज्य पितामह ! मैं इनसे क्या कहूँ मेरी बात तो इनको कटारी मालूम होती है, दोधारी छुरी मालूम होती है।

भीष्म—होना ही चाहिये, मरने वाले रोगी को दवा बुरी मालूम होती है।

वि०—भाई धृतराष्ट्र ! तुम दैवेच्छा से नेत्रों के अन्धे हो, मगर बुद्धि के अन्धे नहीं हो। दुर्योधन का दुराचार आँखों से नहीं तो हमारी जबानों से देखो, अपने कानों से देखो, यह तुम्हारे कुल का नामो निशान मिटाने का सामान कर रहा है। जिन राजमहलों में महारानियाँ, बहन बेटियाँ, सुख से निवास करती हैं उनमें चीलों और अबाबीलों के घोंसले बनाने का सामान कर रहा है।

धृ०—यही तो मैं भी कहता हूँ। आप अपने भतीजे दुर्योधन को समझाइये।

दु०—पिताजी ! आप इनकी बातों पर न जाइये, भला दो घड़ी जी बहलाने में या न्याय पूर्वक दांव लगाने में क्या नुकसान है ?

धृ०—यही तो मैं भी कहता हूँ। भाई विदुर ! उपदेश करना आसान है। अगर तुम्हारा कोई पुत्र होता तो तुम जानते कि बेटा का मोह किस क़दर बलवान है।

वि०—मोह और ऐसे कुपुत्र का मोह !

धृ०—तो क्या जरासी बात के लिये बेटे को रन्जूर कर दूं, दिल को कलेजे से दूर कर दूं ?

वि०—कर दो, कर दो, और जरूर कर दो, ऐसे कुपात्र को सम्बन्ध तोड़ कर दूर कर दो। खानदान के वास्ते एक आदमी को छोड़ देना चाहिए और गाँव के वास्ते खानदान को। देश के लिये गाँव को छोड़ देना चाहिये तो धर्म और ईमान के लिये कुल जहान को।

बेटा नालायक तजो, तजो मतलबी यार।
निर्मोही माता तजो, तजो निलज्जी नार॥
तजो निलज्जी नार, तजो सन्यासी कामी।
नौकर नमक-हराम तजो अन्यायी स्वामी॥

गुरु लालची तजो, तजो चेला अलसेटा।
पिता अधर्मी तजो, तजो नालायक बेटा॥

दु०—शर्म करो, चचा शर्म करो। हमारी नहीं तो हमारे टुकड़ों की शर्म करो, हमारे आश्रय की शर्म करो, हमारे अन्न की शर्म करो।

भीष्म—बस दुर्योधन ख़ामोश, बिदुर जी तेरे चचा हैं तो बाप की बराबर है, तू इन्हें भोजनों का ताना देता है? शर्म की बात है। क्या तूने यह राज्य अपनी भुजाओं के बल से पाया है? अरे बेशर्म! यह तख्त इनके भी बाप का है जो तेरे कब्जे में आया है आख़िर तू इनके बाप का पोता है फिर इनके सामने ऐसा निर्लज्ज होता है?

विदुर—पितामह! ऐसे २ अज्ञानी अभिमानी लड़कों को समझाने से क्या लाभ है, बन्दर को भागवत सुनाने से क्या लाभ है, अच्छा महाराजा दुर्योधन जी आप मुझ पर बड़ा अनुग्रह करते हैं जो अपने टुकडों से मेरा पेट भरते हैं, इन्हीं टुकड़ों की शर्म सही कि मैं आपको ठोकरें खाने पर सम्भलने को कहता हूँ। नेक रास्तेपर चलने को कहता हूँ।

धृत०—यही तो मैं भी कहता हूँ।

विदुर—क्या खाक कहते हो। तुमने दो पत्थरों को रगड़ कर आग निकाली है, यह अपने कपूर के ढेर में आग डाली है।
अब भी समझो, एक भी मानो न इस मगरूर की।
वर्ना फिर बाकी न होगी खाक भी कापूर की॥

धृत०—यही तो मैं भी कहता हूँ। क्योंकि मैं आप ही इस बुरे काम के परिणाम से डरता हूँ आपकी आज्ञा को मान कर अभी इस सभा को विसर्जन करता हूँ। अरे दुर्योधन! बस

जुआ हो लिया, चौसर को सभा से दूर कर दो, पांसों को चूर चूर कर दो।

दुर्यो०-बस इन्होंने बहकाया तो आप रंग-भंग करने लगे। आखिर आपको किस बात का भय है जिससे डरने लगे? अगरचे जुआ एक बुरा शब्द है जो लोगों की आंखों में हकीर है लेकिन आप जानते हैं कि पासे का दूसरा नाम तकदीर है।

धृत०—यही तो मैं भी कहता हूँ कि इसमें किसी का जोर नहीं चल सकता। खेलो खेलो, जो कुछ हुक्म दे दिया है मैं भी उसे नहीं बदल सकता।

शकुनी—चलिये महाराज! हाथी, घोड़े, माल, खजाना, जेवर, भण्डार ये सब कुछ तो आपने हारा, अब कौनसी चीज पर बाकी है आपका इजारा?

युधि०—देखो वो मोतियों का हार जो सहदेव के गले में पड़ा है मैंने उसे लगाना कुबूला।

भीष्म—अफसोस! पाण्डु का बेटा मान भूला।

शकुनी—जेवर तो तो राजन आपने पहले दाँव में हारे हैं अब वो आपके नहीं हमारे हैं, हां बेशक सहदेव जिसके गले में हार है उस पर आपका पूरा-पूरा अधिकार है।

युधि०—तो मैं ने उसी को दांव पर लगाया।

द्रोणाचार्य—क्यों नहीं, फूंक मारने वाले ने जो कुछ बजाया वही बाँसरी ने गाया?

शकुनी—देखिये फिर भी मेरा ही दाँव आया। अब क्या नकुल को दांव पर लगाइयेगा?

युधि०—अब नकुल मेरी बाजी है।

शकुनी—अहा, देखो पासा मेरे ही हाथों में राजी है। अब तो मैं केवल अर्जुन और भीम ही को आपका धन पाता हूँ।

युधि०—परवा नहीं, बाँए हाथ से भी तीर चलाने वाले गांडीव धनुषधारी अर्जुन को दांव पर लगाता हूँ।

शकुनी—लगाइये मैं भी किस्मत आजमाता हूँ। क्यों नहीं आखिर तो पासों को मेरे साथ प्रीत है। देखिये अबके भी मेरी ही जीत है।

विदुर-कारण कि वह ज्ञान शून्य है और तेरे हिस्से में अनीति है।

शकुनी—अब क्या भीमसेन महाराज पर नजर है?

युधि०—तो वह गदाधारी योद्धा भीमसेन भी अबके दांव पर है।

विदुर—लकड़ी का बाजा समय कुसमय क्या टटोलेगा, बजाने वाला जिस सुर पर उंगली रक्खेगा वही सुर बोलेगा।

शकुनी—वाह वा, वाह वा, इसे कहते हैं भाग्य सुभीता। राजन अच्छी तरह देख लीजिये यह दांव भी मैं ही जीता। अब तो आपके सिवा आपकी कोई चीज नजर नहीं आती।

युधि०—बस तो अबके दाँव पर मुझ ही को मानो।

शकुनी—जय देव, देखा महाराज, है वही पहला ही दांव, अच्छी तरह पहचानो।

युधि०—बस हो चुका!

दुर्यो०—क्या हो चुका?

युधि०—मेरे राजाभिमान का खातमा हो चुका, मेरी शान का खातमा हो चुका, मैं इस ताज के साथ अपने गौरव और घमण्ड को दूर करता हूँ। तुम्हारा दास बनना मंजूर करता हूँ।

आज तक हमको बिठाते थे बशर आंखों पर,
आज वह दिन है कि सब हँसते हैं तर आंखों पर।
आप रखदें ये चरण बढ़के अगर आंखों पर,
पुतलियां झुकके कहें आइये सर आंखों पर।

आज्ञा कीजिये दिल चाहे सो स्वामी हमको,
दी है तकदीर के पासे ने गुलामी हमको।

शकुनी—परन्तु हमें आपके साथ कम से कम एक दाँव की और मुरताकी है क्योंकि अभी आपका अमूल्य धन बाक़ी है।

युधि०—क्या है फरमाइये ?

शकुनी—अबकी बाजी में महारानी द्रोपदी को लगाइये।

भीष्म—कैसी नीच गुफ्तगू है, थू है, थू है।

शकुनी—अगर आप द्रोपदी को दांव पर लगाएंगे तो भाइयों को भी बन्धन से छुड़ायेंगे और आप भी मुक्त हो जायेंगे।

युधि०—ठीक है।

सभासद—(आश्चर्य से) ठीक है !

द्रोणाचार्य—अरे लानत है इस ठीक पर।

विदुर, भीष्म—धिक्कार है शकुनी की तहरीक पर।

धृत०—यही तो मैं भी कहता हूँ। कि थू है इस राय के शरीक पर।

अर्जुन—ओः मान्यवर भाई ! मुझे अधिक कहने का अधिकार नहीं है। मगर जरा सोच समझ कर बाजी स्वीकार करना, योग्य अयोग्य का भी विचार करना।

भीम—मैं भी चाहता हूँ कि छोटा भाई, छोटा और बड़ा बड़ा रहे, भलाई इसी में है कि हमारे मुंह में ताला पड़ा रहे।

युधि०—भीम ! तुम क्या कहते हो मैं कुछ नहीं समझा।

भीष्म—समझते कहां से, समझ का दरवाजा तो बन्द है। समझने वाली शक्ति जुए के नशे में मन्द है, तब ही तो ये अनाचार पसन्द है।

दुर्यो०—डालो डालो पांसा डालो।

शकुनी—हे पांसे की देवी काली, रहना सेवक की रखवाली।
लगी है बाजी पर पंचाली, अबका दांव न जाये खाली।

(पांसा डाला)

दुर्योधन, शकुनी—अहा हा हा ।

दुर्योधन—बात जो कुछ दिल में धारी हो गयी ।
द्रोपदी भी लो हमारी हो गयी ॥

विदुर—ओ अन्धेर अन्धेर परमात्मा कैसा भयानक हथफेर ।
(बेहोश होकर गिर जाते हैं)

दुर्यो०—प्रातकामी ! उठो, जाओ द्रोपदी जिस हालमें हो उसी हाल से यहां ले आओ (प्रातकामी गया) क्यों भीम ! अब क्या पेचोताब खाते हो क्या आंखे दिखाते हो ?

भीम—आंखें ? ओह आंखें ? अफसोस ! अब ये तेरी तरफ क्रोध से नहीं देख सकतीं क्योंकि इन पर भाई के डाले हुए परदे पड़े हैं, अदब और लिहाज़ के सिपाही पहरे पर खड़े हैं वरन। अब तक ....

हुई होती नज़र से क़ालिबे नापाक की ढेरी ।
जहां तू है पड़ी होती वहां एक ख़ाक की ढेरी ॥

दुर्योधन—अब यह ख़याली खीर सेवकों की पंक्ति में बैठ कर पकाना। क्यों, याद है वह ज़माना ? मुझे पानी के कुंड में गिराना और फिर क़हक़हा लगाना। अब उस समय को भूल जाना ।

बहुत कुछ कर लिया आराम मख़मल के गदेलों में ।
सुलाऊंगा तुम्हें अब पत्थरों में और ढेलों में ॥
करोगे अब खरेरा मेरे घोड़ों का तबेलों में ॥
तुम्हीं ले जाओगे गलियों से कूड़ा भरके ठेलों में ॥
सरे दरबार सेवा में हरेक बांधे कमर होगा।
किसी के हाथ में बल्लम किसी के कर चँवर होगा ॥

भीम-दुर्योधन ! ज़बान संभाल, चुटयाले सांपों पर हाथ न डाल ! मूर्ख ! ऐसी अनीति भगवान को भी प्यारी नहीं है।

धृतराष्ट्र- यही तो मैं भी कहता हूं, बेटा दुर्योधन ! मेरा कहना मान, द्रोपदी को यहां न बुला। वो यहां आने की अधिकारी नहीं है।

दुर्योधन—क्यों क्या इन्होंने दाँव पर हारी नहीं हैं।

भीष्म-हारी है, मगर एक बेहोश आदमी ने अजखुद फ़रामोश आदमी ने।

लीन हो शिकार के बिचार में शिकारी जैसे,
देखे नहीं ऊंच नीच दौड़त उमंग में।
मस्त हो कलाली की पियाली में शराबी जैसे,
जंगी जैसे हो जाता है मतवाला में॥
लोभी को अधर्म और धर्म जैसे सूझे नाहीं,
कामी जैसे अंधा बने नारी के प्रसंग में।
एसे ही ये धर्म राजा कहां रहा धर्म राजा,
व्यसन बिराजा आके राजा के जो अंग में॥

दुर्यो०—अगर वो यहां आयेगी तो क्या उसकी इज्ज़त घट जायगी ? दुनियां में जिन स्त्रियों का केवल एक पति है, उन्हीं की इज्ज़त है, उन्हीं का मान है. मगर द्रोपदी पांच पतियों की भार्य्या है तो एक श्या के समान है।

भीम—ओ चाण्डाल ! (लपक कर मारना चाहता है)

युधिष्ठिर—शांत, भीम शान्त !

दुर्योधन—नहीं सम्मान के लायक़ कोई रण्डी ज़माने में।
न होगा पाप कुछ उसको यहां नंगी नचाने में॥

(प्रातकामी आता है)

प्रातकामी—श्रीमान् नरेश !

दुर्योधन—क्यों ? द्रोवदी को लाया ?

प्रातकामी—मैंने उसे आप का हुक्म सुनाया।

दुर्योधन—उसने सुना ?

प्रातकामी—सुना, मगर इस तरह जिस तरह गीदड़ की आवाज को सिंहनी सुनती है और मानती है कि मेरा तिरस्कार हुआ, वही रङ्ग उसके चहरे से आशकार हुआ।

द्रोणाचार्य—वह हुक्म नहीं था एक तीर था, जो उसके कलेजे से पार हुआ।

प्रातकामी—निस्संदेह क्षत्रिय पुत्री द्रौपदी ही थी कि इस न सहने लायक दुःख को सह गई, अपना क्रोध शान्त करने के लिये केवल इतना ही किया कि हाथ मले और दांत पीस कर रह गई।

दुर्योधन—फिर क्या हुआ?

प्रातकामी—सारा मुंह तमतमा गया फिर उस पर यकायक जर्दी फिर गई, इतने ही में सर चकराया और मूर्च्छित होकर गिर गई।

दुर्योधन—खूब हुआ, फिर उसके बाद?

प्रातकामी—अब उसे दासियों के यत्न से होश आया तो मुझे उल्टे कदमों लौटाया, अब वो सभासदों से प्रार्थना करती है कि मैं इस समय रजस्वला हूँ मेरा कपड़ा एक है।

द्रोणाचार्य—बेशक ऐसी हालत में यहां बुलाना अज्ञान है अविवेक है।

दुर्योधन—उससे कहो कि तेरी प्रार्थना बिलकुल बेढंगी है, जो कुछ कहना हो यहां आकर कहो, हमें इसकी परवा नहीं कि एक कपड़े वाली है या नङ्गी है। क्यों जाता कि नहीं? खड़ा खड़ा क्या विचार करता है? क्या भीम और अर्जुन से डरता है?

प्रातकामी—महाराज मेरी ताकत और हिम्मत से तो यह काम बाहर नहीं मगर नीयत और तबीअत से.........

दुर्योधन—अरे कायर, डरपोक ! अब किसका भय है और किसकी रोक टोक ? यह सब घमंडी तो हारे हुए हैं दास-पद स्वीकारे हुए हैं।

प्रातकामी—इनका भय नहीं मुझे परमात्मा का भय डराता है। ऐसे नीच कर्म के लिए पांव उठाता हूँ तो शरीर थर्राता है। सती द्रौपदी के सामने इस इरादे से जाने में मुझे लज्जा आती है उसका अखण्ड पतिव्रत धर्म, उसकी शान, उसकी गम्भीरता, उसका दुःख देखकर मेरी वीरता पर ख़ाक पड़ जाती है।

यहां जो कुछ है वह हालत नहीं रहती वहाँ मन की।
इरादा ही बदल देती हैं शक्ति उसके सतपन की॥

दुर्यो०—तो जाओ चूड़ियां पहन कर महलों में बैठ जाओ, क्षत्रिय कुल के माथे पर कलंक का टीका न लगाओ।

भीष्म—ओ मूढ़ मतिमन्द ! क्षत्रिय कुल में कलंक का टीका वह लगाता है या तू ? शेरों को नशा पिलाकर कपट के पिंजरे में बन्द कर लेने पर यह इतराता है या तू ? क्या इसी आचार पर क्षत्रिय कुल का अभिमान है ? क्या जुए का मण्डप ही क्षत्रियों की कीर्ति बढ़ाने वाला रण का मैदान है ?

बड़ा मैदान जीतोगे बड़ी तलवार मारोगे।
भरे दरबार में जब लाज अबला की उतारोगे॥

दुर्योधन—प्रातकामी !

प्रातकामी—स्वामी।

दु०—द्रौपदी को घसीट लाने के लिए जाता है या तेरा सर उतारने के लिये खांडा मंगाऊं।

प्रातकामी—मैं उस बेहयाई के लिए जीऊँ इससे बहतर है कि आपके हाथ से मर जाऊँ।

नहीं परवा अगर खांडे दुधारे सर पे चल जाएँ।
पड़ें भाले जिगर पर तीर सीने से निकल जाएँ॥
जगत मुझसे फिरे और आप भी आँखें बदल जाएँ।
मगर डालूं सती पर हाथ तो ये हाथ गल जाएँ॥
महादेवी है वो चरणों को जिसके देवता पूजें।
उधर जायें तो थम हो जाएँ पाऊँ इस कदर सूजें॥

(घृणा करता चला जता है)

दु०—दुशासन !

सूतका बेटा है कायरपन का ये अवतार है,
क्या करेगी काट आखिर काठकी तलवार है।

जाओ तुम जाओ और द्रौपदी के वह लम्बे केश जो यज्ञ में मन्त्रों के जल से सींचे गये हैं उन्हें खींचते हुए यहां ले आओ।

घूंघर वाले बाल निराले कोयल काले घोर घनेरे।
टूट भी जाएं छूट न जाएँ क्यूं पकड़े हैं सांप सपेरे॥
केश छुड़ावे केश उखाड़ो हाथ छुड़ावे हाथ मरोड़ो।
वस्त्र विहीना होय बलासे बीच सभा में लाकर छोड़ो।

भीम—आ भाई साहिब ! सुनते हो ! यह आवाज नहीं एक हवाई तलवार है जिसका धार एक छुपा हुआ वार है—

रख दिया जिसने मेरे दिलको कुचल कर, काट कर,
टुकड़े टुकड़े कर दिए अन्दर ही अन्दर काट कर।
खूब होता आप रख देते मेरा सर काट कर,
बाज को चिड़ियों में छोड़ा है क्र है पर काट कर।
बन्द है मुंह जोश क्या हो लहजाओ गुफ्तार में,
भाई की खातिर ने टांके भर दिये मिन्कार में।

(दुश्शासन द्रौपदी को घसीटता हुआ लाता है)

द्रौपदी-अरे निर्दयी दया कर अरे बेहया दया कर, चाण्डाल मैं रजस्वला हूं, एक वस्त्रवाली से दूर रह, आखेट के कुत्ते सिंहनी पांचाली से दूर रह।

दुश्शासन—अब सिंहनी के अभिमान को भूल जा। देख वो तेरे सारे सिंह हार की जञ्जीरों में जकड़े पड़े हैं। आज तू उस राजा महाराजा दुर्योधन की दासी है जिसके आगे इक़बाल, फ़तह, लक्ष्मी सब हाथ बांधे खड़े हैं।

द्रौपदी—अरे दुष्ट! जुल्म और अत्याचार की भी हद होती है (दुर्योधन से) अरे निर्दयी मेरी साड़ी को न खिंचवा यह किसी धनुष की प्रत्यंचा नहीं है एक अबला रजस्वला की धोती है।

दुर्योधन—हम धोती खिंचवायें या साड़ी, नङ्गी रक्खें या उघाड़ी हमारी दया पर इसका सारा आधार है। जुए में जीते हुए माल को चाहे जिस तरह बर्तें यह हमें अख़्तियार है।

द्रौपदी—हाय यह सभा अन्धी है या बहरी

भरी है आज क्या तुम सब ने रूई अपने कानों में
असुर के खौफ ने क्या ठोंक दी कीलें बानों में
लगा कर डाट बैठी है सभा मुंह के दहानों में
सभासद् हैं कि सब मिट्टी के पुतले हैं दुकानों में
निलज्जे क्षत्री के लाल हैं या कौन हैं सारे
सती की देखते हैं दुर्गता और मौन हैं सारे

भीम—ओ भगवान! यह संताप, यह कलाप!

द्रौपदी पर हाथ जो छोड़ें वो जिन्दा छूट जाँय
टूट जाँय यह भुजायें कान आँखें फूट जांय

द्रौपदी—आज क्या द्रोणाचार्य का धनुष गल गया? क्या अश्वत्थामा के बाणों को तरकश निगल गया? क्या

कृपाचार्य की तलवार पर काई डटी हुई है ? क्या भीष्म-पितामह की जबान कटी हुई है।

अर्जुन—गुरु महाराज और दादा साहिब ! बस अब नहीं सहा जाता, आज्ञा कीजिए कि मेरा फर्ज क्या है।

भीष्म—बेटा अर्जुन ! मैं क्या कहूं।

बुराई है आज बोलने में न बोलने में भी है बुराई।
मेरी नजर में सगे हैं दोनों न ये पराया न वो पराई॥
खड़ा हूँ ऐसी विकट जगह पर इधर कुआ है उधर है खाई।
जिधर जरा झुकके झांकता हूँ उधर ही देते हैं जम दिखाई॥
जबान है होंठ हैं दहन है ये सब है सामान बोलने का।
मगर वहीं बोलना है अच्छा जहाँ हो कुछ मान बोलने का॥

भीम—(युधिष्ठिर से) भाई मुझे मुआफ करना तुम्हारी शिकायतों के शब्द मेरे मुंह से निकले पड़ते हैं। मैं रोकता हूँ तो मुझ से भी लड़ते हैं बिगड़ते हैं।

युधिष्ठिर—थूको, थूको सब मेरे मुंह पर थूको।

अर्जुन—ज्वारियों के घर में बहू बेटियाँ तो क्या रण्डियाँ भी होती हैं तो वो उन्हें दांव पर हारा नहीं करते हैं। ऐसी बेइज्जती गवारा नहीं करते हैं। आप आज्ञा दें तो मैं अभी....

युधि०—शान्त ! अर्जुन ! शान्त !

द्रौपदी—हाय विधाता ! क्या मेरा कोई आंसू तुझे नजर नहीं आता ?

भरा है किस बला की मेरे अश्कों में पशेमानी।
निकलता है जो एक आंसू तो पड़ता है घड़ों पानी॥
सुशीला, वीरपत्नी, नृप द्रुपद पुत्री, सती रानी।
उसी की दुष्ट ने साड़ी इधर खींची उधर तानी॥
तुही है देखने वाला मेरे करतार साड़ी का।
हुआ है पानी पानी लाज से हर तार साड़ी का॥

दुर्योधन—द्रौपदी ! ये आँसू नहीं वही पानी के छींटे हैं, याद है ?

द्रौपदी—कौन से ?

दुर्योधन—जो तुम्हारे सभाभवन के अन्दर मेरे जल में गिर पड़ने से उड़े थे।

तेरे आंसू नहीं अरमां दुर्योधन के निकले हैं।
वही छींटे हैं पानी के जो आंसू बनके निकले हैं॥

अब रानी महारानी होकर सभा में खड़ी २ साड़ी उतरवाती हो। क्या अन्धे की औलाद को अपना जोबन दिखाती हो ?

द्रौपदी—नहीं, परमेश्वर घटा को हटाकर तेजस्वी सूर्य को प्रकाशमान करता है ताके तुच्छ तारे मन्द हो जायँ चमकती हुई ज्योति को देखकर उल्लू की आंखें बन्द हो जायं।

दुर्योधन-वो वचन याद है ? दुर्योधन अन्धा है, अन्धे की औलाद है।

द्रौपदी—हां मैं अब भी कहती हूँ कि न तुझे उस रोज़ नज़र आता था न आज नज़र आता है। इसी वास्ते मेरे दयावान आंसुओं को उस दिन के छींटे बताता है।

दुर्योधन—ये वो छींटे नहीं तो क्या हैं ?

द्रौपदी—मेरे नैत्रों से देख मेरा सारा शरीर अपमान की अग्नि से जल रहा है। रोम रोम से शौला निकल रहा है जिसे देख कर आँसू साड़ी को तर करने आ रहे हैं आप फ़ना हुए जाते हैं और मेरी लाज बचा रहे हैं।

एक ये भी हैं कि जिनका रहम में सानी नहीं।
एक तू भी है कि जिसकी आंख में पानी नहीं॥

दुर्योधन—परन्तु तेरी आंख में जो पानी है ये भी दो घड़ी की महमानी है।

ओस है पत्ते के ऊपर दिन चढ़े ढल जायगी
जो नमी बाकी रहेगी धूप से जल जायगी
यह दुहाई और यह फरयाद निष्फल जायगी
जायगी तू दासियों में सीस के बल जायगी
अब मेरी सेवा है तेरा काम है कुन्दन बरन
ढोलना सर पर चंवर मेरे दबाना ये चरन

द्रौपदी—ये चरण ? अरे ये चरण तो एक इन्सान के चरण हैं। अगर मैं अपने महाराज की आज्ञा पाऊंगी, तो एक कुत्ते के पांव भी धो धो कर पी जाऊंगी।

विश्व भर का दुख आ टूटे जो मेरी जात पर
फिर भी जितना प्रेम है वह कम न होगा तात पर
जीव है या अङ्ग है या चीर है इस गात पर
है मेरा सब कुछ निछावर पाण्डवों की बात पर
उफ्र स्वामी से सती को कुछ नहीं संसार में
बेच लें चाहे खड़ी करके मुझे बाजार में

सभासद्—धन्य है ! धन्य है ! तेरे पतिव्रता धर्म को धन्य है।

द्रौपदी—मैं राजा दुर्योधन के महल में झाड़ू लगाने को तैयार हूँ, धोतियां निचोड़ूंगी झूठे बर्तन मांजने से मुंह न मोड़ूंगी मगर ईश्वर के वास्ते इसका कारण तो समझा दिया जाय ?

दुर्योधन—कारण यही है कि राजा युधिष्ठिर ने अपना तमाम धन जुए में हार कर चारों भाइयों को लगाया, फिर खुद को दांवपर चढ़ाया, जब अपने आपको भी हार गए तो तेरी बारी आई। अब यह तेरा सौभाग्य है कि तू मेरी दासी कहलाई।

द्रौपदी—उन्होंने पहले अपने आप को हार कर मुझे हारा ? तो तुमने मुझे दासी के नाम से क्यों पुकारा ? बोलं

अन्याय के पक्षपाती बोल ! धर्म घाती बोल ! इस सभा मे बड़े बड़े धर्मज्ञानी शास्त्रों के जानने वाले बैठे हैं मुझे जवाब दें कि यह बात नीति के अनुसार है ? क्या एक हारे हुए शरीर को—जो बिलकुल पराधीन है—किसी वस्तु के हारने का अधिकार है ?

(सब खामोश हैं विकर्ण उठता है)

विकर्ण—बड़े अफसोस की बात है कि द्रौपदी का सवाल हर एक मनुष्य सुन रहा है और कानों पर उड़ा रहा है। यह ध्यान नहीं आता कि चुप से धर्म पीड़ा पा रहा है ?

अर्जुन—ओ समय ! समय ! तेरा प्रभाव बलवान है कालचक्र तू प्रधान है।

बुरी निगाहों से जिसे देख न सके दिनेश।
आज सभा में खिंचत है उसी सती के केश॥

विकर्ण—मैं हाथ जोड़कर निवेदन करता हूँ कि या तो द्रौपदी के इस सवाल का जवाब दिया जाय या उसे दासी बनाने से मुक्त किया जाय।

(सब चुप रहते हैं)

हैं ! फिर वही सन्नाटे का सन्नाटा ! क्या आप महाशय यह जानते हैं कि बोले और दुर्योधन ने सर काटा ? अच्छा न बोला क्रोध के पुतले और मुंह के अवतार का भय मानकर मुंह न खोल। मगर मैं यह अन्याय नहीं सह सकता। सत्य का पक्ष किए बगैर नहीं रह सकता। द्रौपदी किसी तरह दुर्योधन की दासी नहीं हो सकती।

दुर्योधन - क्यों नहीं हो सकती ? बेवकूफ कुल-घाती ! तुझे छोटा होकर बड़े भाई के सामने बोलते शर्म नहीं आती।

विकर्ण—शर्म ? शर्म क्यों आय ? क्या मैं किसी के साथ जुआ खेला हूँ ? क्या किसी को फरेब से हराया है ? क्या भोले भाइयों को छल से छलता हूँ ? या पराई सम्पत्ति देखकर जलता हूँ ?

दुर्योधन—अरे दासी को दासी नहीं ठहराता क्या यही बातें हैं विवेक की ?

विकर्ण—पहले आप यह तो बताइये कि द्रोपदी पांचों भाइयों की स्त्री है या एक की ?

दुर्योधन—पांचों की।

विकर्ण—पांचों की ?

दुर्योधन—हां पांचों की।

विकर्ण—पांचों की स्त्री है तो एक भाई उसे दांव पर लगाने का अधिकारी नहीं है।

दुर्योधन—नहीं नहीं मैं भूला यह पांचों की प्राणप्यारी नहीं है। अर्जुन ने इसके स्वयंवर में मत्स्य को निशाना बनाया था इस वास्ते महाराजा द्रुपद ने अपनी प्रतिज्ञा के अनुसार अर्जुन ही के साथ इसका विवाह रचाया था।

विकर्ण—तो अर्जुन की भार्य्या को हारने का अधिकार युधिष्ठिर को किस प्रकार होगा ? अगर कोई बाजारी जुवारी तुम्हारा राज ताज कहीं हार आये तो क्या तुम्हें राज्य दे देना स्वीकार होगा ?

दुर्योधन—यह भी कोई सवाल है। पांचों भाईयों में जब एकत्व भाव कमाल है तो बेशक अर्जुन का माल युधिष्ठिर का माल है।

विकर्ण—यह बिलकुल उल्टा और खुदगरज खियाल है मतलब का ज्ञान है वर्नः छोटे भाई की स्त्री तो पुत्री के समान है। पुत्री पर पिता की नहीं, पति की सत्ता होती है।

दुर्योधन—यह शिकार खेला नहीं कुछ टट्टी की ओट।
चौसर के मैदान में मारी है यह गोट॥

विकर्ण—बड़ा मैदान मारा गोट चौसर पर अगर मारी।
इसी पर ख़त्म करदी आपने मर्दानगी सारी॥
बहादुर वीर कहलाते हो उस पर यह रियाकारी।
चलाते हो कपट के बाण बनते हो धनुषधारी॥
इसीको फतह कहते हो? इसी को जीत कहते हो?
जो कहते हो तो निश्चय धर्म से विपरीत कहते हो॥

दुर्योधन—लड़कों के मुंह लगना दानाई नहीं है। बस विकर्ण आज से मेरा शत्रु है, भाई नहीं है।

विकर्ण—शत्रु ही सही, मैं इन धमकियों में आने वाला नहीं हूं। इन क्रोध के धक्कों से घबराकर सत्यता के मार्ग से कदम हटाने वाला नहीं हूँ।
करूंगा पक्ष मैं हरगिज न ऐसे द्रोहगामी का।
तुम्हारा भय करूं या भय करूं लोकों के स्वामी का॥

दुर्योधन—(मारने के लिए लपक कर) ठहर तो बदज़बान।

द्रोणाचार्य्य—बस, सावधान! अगर लड़के पर हाथ उठाया तो यह समझना कि गुरू का शस्त्र कलेजे में आया।

दुर्योधन—(विकर्ण से) बलिदान के बकरे! तू इसकी (द्रोपदी की) हिमायत करता है?

विकर्ण—मैं तो नहीं परन्तु एक गुप्त तेज जो जगत का कर्त्ता, भर्त्ता हर्त्ता है वही हमेशा पतिव्रता सती स्त्रियों की हिमायत करता है।

न तुम भी सुख से बैठोगे दुखाकर आत्मा इसका।
सती है द्रोपदी रक्षक है वह परमात्मा इसका॥

द्रोपदी—दीनानाथ! अनाथ-दुःख-हर्ता, आपत्ति मेरी हरो।
घेरी है मृगराज, गाय कपिला, हे कृष्ण रक्षा करो॥

दु०—मेरा हुक्म अभी इसे भरी सभा में नङ्गी कराता है फिर मैं भी देखूं कि परमात्मा किस तरह धोतियां और साड़ियाँ लिये दौड़ा आता है।

द्रोपदी—धाओ, धाओ हे दुःखभञ्जन! धाओ, हे जनरंजन! धाओ।

कृष्ण मुरारी, सकट हारी, आप कहां हैं? शीघ्र पधारें।
टेर यही है नाथ सभा में दुष्ट न मेरा चीर उतारें॥

दुर्योधन—उतारें और अभी उतारें।

द्रोपदी—खबरदार जो कोई मेरे चीर को हाथ लगायेगा तो यह अग्निकुंड जो न्याय के लिए दरबार में सौगन्द खाने के काम आता है मेरा दूत बन जायगा। अभी अग्निदेव को बुलायगा और पवन के द्वारा त्रिलोक के स्वामी तक तेरे अत्याचार की खबर पहुंचायगा।

दुर्योधन—क्या मजाल है कि आज अग्नि और पवन जैसे दूत तेरे काम आयें। इनकी क्या शक्ति है कि मेरे सामने सर उठायें।

मैं अगर चाहूँ बुझाऊं आग को काफ़ूर से।
बांध कर डालूँ पवन को रस्सियों के चूर से॥

1044

द्रौपदी—धाओ, धाओ अन्तर्यामी धाओ ! गरुड़ गामी धाओ, तुमने एक ही रात में यादवों का उद्धार करने के लिए द्वारिका नगरी को बसाया। नीच गोपियों तक का मान बढ़ाया ! कंस को मारकर वसुदेव और देवकी को कैद से छुड़ाया। उन सङ्कटों के आगे मेरे सङ्कट की बिसात ही क्या है ? तुम्हारे नज़दीक यह बात ही क्या है ? नाथ !

घटाओं में मुझे ढक लो कि पूरी आश हो जाए।
मगर ऐसा न हो साड़ी मेरी आकाश हो जाए॥
न हो ये अङ्ग बेपर्दा, बला से लाश हो जाए।
मेरा ही नाश हो जाए जो इज्ज़त नाश हो जाए॥
भभक कर जल उठे फ़ौरन जो नङ्गा हो बदन मेरा।
यही भूमी चिता हो और यही साड़ी कफ़न मेरा॥

दुर्योधन—इस बेइज्ज़ती से बचने का केवल यही उपाय है कि तू पाण्डवों को छोड़कर दुर्योधन को वरे और मेरी बांई रान पर बैठकर मेरे कलेजे से आलिंगन करे।

भीम-ओ चाण्डाल ! मैं सौगन्ध खाता हूँ कि तेरे कलेजे से द्रौपदी नहीं, मेरी मुष्टिका आलिंगन करेगी। तेरी बांई रान पर मेरी गदा बैठेगी। अगर रणभूमि में तेरे वक्षस्थल को घूंसे की जर्ब से न तोड़ूं उसमें से लहू का घूंट पी कर न छोड़ूं तेरी बांई रान को अपनी गदा से न तोड़ूं तो पाण्डु पुत्र न कहलाऊं। हीजड़ों के हाथ से मरूं और मरने पर भी उत्तम योनि न पाऊँ।

दुर्योधन—देखा जायगा—दुश्शासन वीर ! देखता क्या है उतार ले चीर ।

(दुश्शान द्रोपदी का चीर उतारता है और चीर बढ़ता ही जाता है लोक परलोक दोनों जगह का दृश्य नजर आता है ।
यहां अनन्त चीर का अन्त करने का दुश्शासन
अत्यन्त जोर लगा रहा है, वहां अनाथों
का नाथ गणों की मार्फत अपना
दुपट्टा द्रोपदी की मदद
को पहुंचा रहा है ।

इसी पर

ड्राप

अङ्क २ प्रवेश १

जङ्गल

जुए में हारे हुए पाण्डवों को धृतराष्ट्र ने दासत्व से मुक्त करा दिया था। और यह शर्त करार पाई थी कि पाण्डव तेरह साल बन में गुजारें उनमें तेरवां साल पोशीदः तौर पर गुजारें। अगर तेरहवें साल में उन्हें कोई पहचान लेगा तो फिर तेरह साल तक बनवास करना होगा। पांडवों ने तेरह साल राजा विराट के पास मुख़्तलिफ़ ओहदों पर गुजारा है। राजा विराट की एक लाख गौ उड़ा ले जाने की नीयत और सुशर्मा के बहकाने से दुर्योधन विराट देश पर चढ़ आया है। इधर से भी मुक़ाबिले की तैयारियाँ हो रही हैं। पांडव भी खुफिया तौर पर शरीके जंग हैं।

गाना

बिराट सेना—जँगियो धाओ देर न लगाओ, बढ़ जाओ मारो
काटो कर डालो चूर चूर।
दुश्मन सब भाग जायेंगे, रण से बेलाग जायेंगे,
गौवों को त्याग जायेंगे, मरना एक बार आखिरकार है
यह धार लो शौहरा हो दूर दूर।
माता के दूध पीने की रखनी है आज लाज।
रण में मरना समझो जीना निर्भय रहना, लड़के मरें जो
हम नहीं हैं गम जरा भी।
मिलकर सब एक बार चलो, चलो, चलो, चलो, बढ़ जाओ सूर सू

(विराट की फौज जाती है और दुर्योधन के साथ
द्रोणाचार्य और सुशर्मा आते हैं)

द्रोणाचार्य—दुर्योधन नरेश ! तुम इस राजा सुशर्मा के बहकाने
से जो इस विराट नगर चढ़ आये हो यह दूसरी भूल है।
विराट की गौवें हर लेजाने का लोभ जो दिल में है याद
रक्खो यह छाती पर त्रिसूल है।

सुशर्मा—गुरु महाराज ! विराट का सेनापति कीचक मर गया तो
अब यह समझिये कि विराट के बल और घमण्ड का जो
दरिया चढ़ा हुआ था वह बिलकुल उतर गया।

द्रोणाचार्य—आप की यह धारणा खोटी है और खोटी है जांच।
एक कीचक मर गया मौजूद हैं अब पांच पांच॥
मैं कीचक के बल और पराक्रम को अच्छी तरह जानता हूँ
इसी वास्ते निश्चय मानता हूँ कि जरूर उसे भीम ने मारा
है और पाण्डवों ने जरूर शर्त के अनुसार तेरहवां साल
जो छुपकर गुजारना था यहीं विराट नगर में गुजारा है।

दुर्योधन—तो इसमें भी हमारा लाभ है. पाण्डवों को हम देख
पायेंगे तो फिर तेरह वर्ष के लिए उन्हें बन में भिजवायेंगे।

द्रोणा०—अब वह समय गया। हां १३ वर्ष के अन्दर अन्दर तुम्हें
नजर आते तो बेशक शर्त के अनुसार दुबारा बनको जाते।

सुशर्मा—और अब ?

द्रोणाचार्य्य—अब नहीं।
बन में कबके हो चुके, तेरह वर्ष अखीर।
अब तो सांप निकल गया, पीटा करो लकीर॥

दुर्योधन—तो भी क्या चिन्ता है। जिस तरह आप हिसाब गिनते
हैं यहां इस तरह कौन गिनता है ? बजाओ, बजाओ
शहनाई और शुरू करदो लड़ाई। (सब का जाना)

⊙

अङ्क २ प्रवेश २

रण-क्षेत्र

(दोनों तरफ के जवान युद्ध कर रहे हैं विराट की तरफ से बिगुल की आवाज आती है।)

द्रोणाचार्य—ठहरो ठहरो। वह सुनो उधर से सुलह की आवाज आई।

दुर्योधन—जरूर विराट हमारी शरण आगया और अपनी तमाम गौवें भेंट देकर जायगा।

(राजा विराट आता है और कंक के रूप में युधिष्ठिर भी साथ हैं।)

विराट—कौरवेश ! संग्राम से पहले मेरी दो बातें सुन ले।

दुर्योधन—क्या है।

विराट—इधर देख।

बान चुटकी में है चुटकी डोर पर तैयार है।
मूठ पर यह हाथ है और हाथ में तलवार है॥

जिसे हम म्यान में भी डाल सकते हैं और बाहर भी निकाल सकते हैं, बाणों के लिए निषंग भी मौजूद है और मैदाने जङ्ग भी मौजूद है बोलो क्या पसन्द है ?

दुर्योधन—बहुत खूब।

कब्जे पे हाथ और है तलवार म्यान में।
यानी है दिल में खौफ, दिलेरी जबान में॥

अगर मेरे मुकाबले की ताब नहीं है तो माफ साफ कह कर मेरी शरण में आओ। अपनी तमाम गौवें भेंट में

लाओ और इस करुणा पूर्ण कायरी को वीर रस के शब्द में न छुपाओ।

युधिष्ठिर—गौओं का दूध तो वही पियेगा जिसके भाग्य में लिखा है। परन्तु महाराजा विराट चाहते हैं कि बिना कारण घोर संग्राम मचाना, निर्दोष वीरों का रुधिर बहाना बुरा है इसलिए धर्म पूर्वक द्वन्द्व युद्ध (कुश्ती) को ठहराइये और दोनों तरफ के हजारों प्राणियों को मुफ्त न कटवाइये।

(सुशर्मा और दुर्योधन सलाह करते हैं)

सुशर्मा—अजी देखना तो सही बूढ़े को एक ही पकड़ में नीचे लाऊँगा, और यमलोक पहुंचाऊँगा।

दु०—(विराट से) अच्छा अगर द्वन्द्व युद्ध में हमारा जय हुआ ?

विराट—तो तमाम गौवें खुशी से लेजाइये।

युधिष्ठिर—परन्तु ध्यान रहे कि द्वन्द्व युद्ध धर्म के अनुसार होगा। दोनों लड़ायकों की मदद कोई तीसरा करेगा तो उसी पक्ष की हार समझी जायगी और वह अधर्मियों में शुमार होगा।

सुशर्मा—मन्जूर।

दुर्योधन—राजा विराट के साथ त्रिगर्त देश के राजा सुशर्मा का द्वन्द्व युद्ध होगा।

विराट—युद्ध होगा कब ? अभी आजाइये मैदान में।
फैसला हो जायगा सारा अभी इक आन में॥

(कुश्ती होती है)

युधिष्ठिर—आप (दुर्योधन से) दूर ही खड़े रहें।

(विराट गालिब आता है और दुर्योधन बेईमानी करता है)

दु०—दुश्शासन, शकुनी ! देखते क्या हो, हाथ बढ़ाओ सुशर्मा की मदद करो और विराट को बांध ले जाओ।

युधिष्ठिर—ओ अधर्मी ! यह बेशर्मी। निर्लज्ज द्वन्द्व युद्ध का नियम तोड़ता है, क्षत्रियों का धर्म छोड़ता है।

दु०—यह उपदेश किसे सुनाता है बेवकूफ़ दम ले तेरी भी मौत का वक्त आता है।

(विराट को बांध ले जाते हैं)

युधिष्ठिर—खड़ा तो रह दुष्ट। वल्लभ ! वल्लभ !!

(भीम को पुकारता है)

भीम—(आकर) महाराज।

युधिष्ठिर—वल्लभ ! महाराजा विराट पकड़े गये जाओ जिस तरह बने छुड़ाकर लाओ।

भीम—जो आज्ञा।

(भीम दरख्त उखाड़ना चाहता है)

युधिष्ठिर—वल्लभ ! क्या गजब करता है ऐसे अमानुषीय कर्म से लोग पहचान लेंगे कि भीम है।

भीम—महाराज यह कोई पहाड़ नहीं है छोटा सा नीम है।

युधिष्ठिर—नहीं फिर भी कोई हथियार लेकर जाओ।

सिपाही—(आकर) महाराज कौरवों के राजा दुर्योधन ने उस मोर्चे को खाली देखकर जा घेरा वहां राजकुमार उत्तर अकेले ही युद्ध कर रहे हैं।

युधिष्ठिर—और कोई साथ नहीं है ?

सिपाही—केवल वृहन्नला सारथी है।

युधिष्ठिर—तो बस काफी है।

(भीम विराट को छुड़ाकर कांधे पर बिठा कर एक हाथ से दुश्शासन का वार रोकता हुआ लाता है और विराट को युधिष्ठिर के पास छोड़कर फिर शत्रु-सेना की तरफ जाता है।)

विराट - हे परमेश्वर ! कंक और बल्लभ का उपकार मानने की शक्ति मेरी जिह्वा को प्रदान कर।

युधिष्ठिर—नरेन्द्र ! चिन्ता न कर सब देखा जायगा संग्राम समाप्त होने पर।

(भीम सुशर्मा को पकड़ लाता है)

भीम—कंक महाराज आज्ञा कीजिये कि इसका क्या करूं ?

युधिष्ठिर—इसे छोड़ दे।

भीम—छोड़ दूं ? छोड़ दूं या घूंसा मारकर इसका सर फोड़ दूं ? या खड्ग से कलेजा तोड़ दूं।

युधिष्ठिर—खड्ग का, तलवार का या बान का मारा हुआ।
जायगा बैकुण्ठ को मैदान का मारा हुआ॥
मारना है जीते जी तो छोड़ दे अहसान कर।
आप ही मर जायगा अहसान का मारा हुआ॥

(दूसरा सिपाही आता है)

सिपाही—महाराज का बोल बाला।

विराट—क्या खबर हे ?

सिपाही—राजकुमार उत्तर ने कौरव दल को परास्त किया और गौवों को छुड़ा लिया।

विराट—वो कहां हैं ?

सिपाही—थोड़ी ही देर में वृहन्नला सारथी के साथ कुशल पूर्वक आने वाले हैं।

विराट—उपकार परमात्मा तेरा उपकार।

उत्तर—(आकर) प्रणाम पिताजी महाराज।

विराट—चिरंजीव हो, मेरे प्राण चिरंजीवी हो।

उत्तर—कंक महाराज के चरणों को नमस्कार।

युधिष्ठिर—आयुष्मान हो राजकुमार।

विराट—बेटा तूने कौरव दल की सेना को भगाया अपनी गौवों को छुड़ाया मैं इस फतह पर अपना हर्ष और तेरा उत्साह बढ़ाए बगैर नहीं रह सकता। तुझे छाती से लगाए बगैर नहीं रह सकता।

उत्तर—परन्तु पिता जी! मैदाने जङ्ग में फतह पाना, गौवों को वापस लाना, दुशमनों को भगाना यह काम वास्तव में मेरा नहीं है।

विराट—यह काम तेरा नहीं है?

उत्तर—जी नहीं।

विराट—तो फिर किस का है?

उत्तर—एक देवकुमार का।

विराट—देवकुमार का?

उत्तर—जी।

विराट—तो वह महाबाहु देवकुमार कहां है? मैं उसका दर्शन करना चाहता हूँ।

उत्तर—उसके दर्शन की चाह दिल में है, उसके पूजन का उत्साह दिल में है तो फिर क्या देर दार है? इधर देखिए वह देवकुमार यही वृहन्नला है।

विराट—हैं! वृहन्नला! देवकुमार! चूनर और चूड़ियों के बदले शस्त्रों का अलङ्कार!

उत्तर—न इस गंभीर को पूजें तो ये गंभीर औगुन है।
जिसे वृहन्नला समझे हुए हैं वीर अर्जुन है॥

विराट—वीर अर्जुन?

उत्तर—हाँ पिता जी वीर अर्जुन। इस विराट देश का सौभाग्य और हमारी ड्यौढ़ी की खुशनसीबी है कि कंक के नाम से महाराजा युधिष्ठिर, बल्लभ के नाम से गदाधारी भीम,

वृहन्नला के नाम से कर अर्जुन तन्तपाल और ग्रन्थक के नाम से नकुल सहदेव और सैरन्ध्री के नाम से रानी द्रौपदी हमारे यहाँ निवास कर रहे हैं।

विराट—उपकार परमात्मा तेरा उपकार। मैं तुम सब भाइयों से क्षमा चाहता हूँ। इस छुपे रूप में जो कुछ अनादर मुझसे हुआ हो वह मुआफ कीजिये।

युधि०—इसका सन्देह न करो।

अर्जुन—दबा हो कीच में मोती तो कोई सर चढ़ाता है ?
कुए में पड़के गङ्गाजल नहीं सम्मान पाता है ?

उत्तर—मेरी राय है कि दुर्योधन के पास सन्देशा भिजवायें कि वह नियम और नीति के अनुसार पाण्डवों का राज्य पाण्डवों के हवाले करे।

विराट—तो यह सन्देशा ले जाने के योग्य कौन है ?

उत्तर—राजदरबार और सभाओं में नीतिपूर्वक बोलने वाले पेशानी पर पड़ी हुई चानों का अर्थ खोलने वाले, हित अनहित के टटोलने वाले, हर एक तरह होशियार दोनों के रिश्तेदार, श्री कृष्ण महाराज हैं उन्हीं को भेजना चाहिए।

विराट—बहुत ठीक, विनय-पूर्वक निवेदन करके उन्हीं को भेजेंगे।

गाना

राजनीति में सुजान, ज्ञान खान तेजवान,
सारे गुणों के निधान, कृष्ण महाराज हैं।

करेंगे न पक्षपात, दिन की न होगी रात,
सोच के कहेंगे बात, क़ायम मिजाज़ हैं ॥
दुर्योधन अधर्मी है, नीयत भी है खराब,
मित्र सब प्रपंची हैं, साथी दगाबाज़ हैं ।
मानो है अथाह नीर, वामें भँवर गम्भीर,
पहुंचा जो चाहो तीर, कृष्ण ही जहाज हैं ॥
जय आ पड़त पग में, डङ्का बजत जग में,
सर पर निरख मुकुट दुष्ट जन डरत सब ।
करो अरज अर्जुन को पत्र एक लिखें उनको,
दुर्योधन हट तज दे रखकर धर्म शर्म ॥

अङ्क २ प्रवेश ३

मार्ग

(दो साधु भजन गाते हुए प्रवेश करते हैं ।)

गाना

दोनों साधु—फूंक फूंक कर पग धर मग में ।
लग न जाय सूल कहीं पग में ॥
पांच ठगों का साथ छोड़ दे ।
उनको अपना समझ न जग में ॥
नजर बचत ही धन हर लेंगे ।
कपट भरा है उनकी रग रग में ॥

(एक नगर निवासी का आना)

एक साधु—(नगरवासी से) क्यों हरिजन ! इस नगर में कोई नन्दा नाम का नाई है ?

नगरवासी—हां महाराज है, उसने साधु सेवा के कारण बड़ी ख्याति पाई है ।

दूसरा साधु—उसका मकान कहां है ?

नगरवासी—मकान तो पास ही है परन्तु वह राजा दुर्योधन की पग सेवा करने जाया करता है, शायद अब भी वहीं गया हो । आपको उससे क्या काम है ?

साधु—काम ? अरे बच्चा साधुओं को गृहस्थों से क्या काम होता है । यही कि उनको उपदेश करना और भिक्षा करके अपना पेट भरना ।

नगरवासी—तो स्वामी ! आपके भोजन का प्रबन्ध तो राजा दुर्योधन के यहाँ बहुत उत्तम रीति से हो सकता है।

एक साधु—दुर्योधन के यहाँ ! नारायण ! नारायण !!

दूसरा साधु—बच्चा ! ऐसी भिक्षा रंगे गीदड़ों और पेट के कुत्तों को योग्य है।

साधू ऐसी भीख से कभी न होत प्रसन्न,
बुद्धि भ्रष्ट कर देत है, अन्यायी का अन्न।

एक साधु—नन्दा एक नाई है परन्तु कृष्ण भगवान की भक्ति उसके रोम रोम में समाई है।

दूसरा साधु—दानी को चाहिए कि पात्र देखकर दान करे और भिक्षुक को चाहिये कि भोजन से पहले दाता सज्जन है या दुर्जन इसकी पहचान करे।

नगरवासी—लीजिए महाराज वह नन्दा नाई इधर ही आ रहा है।

(नन्दा का आना)

नन्दा—राधा कृष्ण, राधा कृष्ण, राधा कृष्ण।

नगरवासी—अरे भाई नन्दा भक्त !

नन्दा—महाराज ! जिजमान की चढ़ती बढ़ती रहे, दूधों नहाओ पुत्रों फलो। राधाकृष्ण, राधाकृष्ण।

नगरवासी—ये साधु तुझे पूछते पूछते यहां आये हैं।

नन्दा—मुझे पूछते पूछते ! अहो भाग्य, अहो भाग्य, पायलागूं महाराज।

(दण्डवत करता है)

साधु—कल्याण हो। कलङ्क और कुसङ्ग से दूर रहो।

नन्दा—महाराज इस शूद्र शरीर के लिए आज्ञा ?

साधु—आज्ञा क्या, अतिथ हैं, भोजन की इच्छा है भक्तराज !

नन्दा—तो पधारिये भगवन् पधारिये जो ज्वार के टुकड़े सेवक

के घर मौजूद हैं वो आप ही के हैं, आप ही के निमित्त हैं, आप ही की कृपा से हैं. पाइये, पाइये, आइये।

(नगरवासी का जाना)

एक साधु—तुम कहाँ जा रहे थे ? अपना काम तो कर आओ।

नन्दा—दयानिधान ! मैं महाराजा दुर्योधन की चरण सेवा को नित्य नियम के अनुसार जा रहा हूँ, वहां जरा देर से जाऊँगा।

दूसरा साधु—वो नाराज तो न होंगे ?

नन्दा—नाराज तो होंगे परन्तु सहन कर लूंगा।

पहला साधु—नहीं, तुम्हें दुख में डालकर हम अपने सुख की चेष्टा नहीं करते इसलिए तुम जाओ, हम और कहीं माँग खायेंगे। राजा दुर्योधन क्रोधी राजा है वो तुमसे अप्रसन्न हो जायगा।

नन्दा—नहीं, भगवन् नहीं। वह अप्रसन्न हो जायगा तो इस लोक के सुख छिन जायेंगे परन्तु आप अप्रसन्न होंगे तो परलोक के अनन्त सुख हाथ से जायेंगे।

कहां साधु सेवा प्रभो, कहाँ राज सम्मान,
गंगाजल को छोड़कर जाऊँ तलैया न्हान।

दूसरा साधु—क्रोधी राजा का जिसे हुआ नहीं कुछ ध्यान,
निश्चय है यह आत्मा भक्ती से बलवान।

नन्दा—महाराज ! आप तो मेरा तुच्छ नाम पूछते पूछते आये और मैं आपके उन चरणों को जिनके दर्शन मात्र से अखण्ड तप का फल प्राप्त होता है छोड़कर चला जाऊं तो मुझसा आभागी कौन है।

रामेश्वर हरिद्वार तीर्थ और तीर्थराज,
सच्चे साधुओं के सदा पीछे पीछे आते हैं।

काम, क्रोध, लोभ, मद, मोह पांचहुँ विकार.
पाऊं की उँगलयों के नीचे दब जाते हैं ।
साधुओं के चरणों को कृष्ण महाराज भी तो
शीश पे चढ़ाते और आंखों से लगाते हैं ।
महा सुख पाते दरसाते हैं वह रूप ऐसा,
चूमके अँगूठा मानों बाँसरी बजाते है ।

साधु—धन्य है ! भक्तराज धन्य है !
ऐसी ही भिक्षा मिले, था यह ही उद्योग,
भूसी भी इस भाव से, होगी मोहन भोग ।

(नन्दा साधुओं को ले जाता है, कृष्णमहाराज नन्दा नाई के रूप में प्रकट होते हैं ।)

कृष्ण—जाओ भक्तराज ! निश्चिन्त होकर घर को वापस जाओ साधुओं को भोजन कराओ उनकी सेवा करो और दुष्ट दुर्योधन के क्रोध से जरा न डरो । मैं तुम्हारी भक्ति से लाचार हूँ, तुम मेरे प्रेम में साधुओं की सेवा करने जाते हो तो मैं तुम्हारे वश में होकर एक दुष्ट की भी सेवा करने को तैयार हूँ । पाण्डवों का संदेशा दुर्योधन को पीछे पहुंचाऊगा, पहले इस रूप से दुर्योधन के चरण दबाऊँगा और भक्त को उसके क्रोध से बचाऊँग ।
यह तो नाई है, अगर बनना पड़े भङ्गी मुझे,
तो भी कुछ लगती नहीं यह बात बेढङ्गी मुझे । (जाना)

गोपीवाला भाग

(कृष्ण जाना चाहते हैं सामने से दुर्वासा ऋषि आते हैं)

दुर्वासा—(कृष्ण से) ओ हो नन्दा भक्त ! कहां जाता है ?

कृष्ण—प्रणाम महाराज ! मैं दुर्योधन की पग सेवा को जा रहा हूँ ।

दुर्वासा—हम आज फिर इधर आ निकले हैं और तेरे ही घर प्रसाद पायेंगे ।

कृष्ण - अहो भाग्य, अहो भाग्य ! भगवन् जो कुछ जो ज्वार के टुकड़े सेवक के घर मौजूद हैं वो आप ही के हैं आप ही के निमित्त हैं, आप ही की कृपा से हैं, आप वे खटके नन्दा की झोपड़ी पर चले जाइये।

दुर्वासा—वहाँ हमारी बात कौन पूछेगा ?

कृष्ण—बहू बेटे वहां सेवा को सब मौजूद घर में हैं।
मेरे घर भर की सारी कुंजियां सन्तों कर में हैं॥

मेरे बेटे की स्त्री "गोपी" बड़ी सती साध्वी है वह बड़े प्रेम से आपकी सेवा करेगी।

उसी से खुला भाग मेरे भवन का।
वह दीपक है मानो अँधेरे भवन का॥

दुर्वासा—अच्छा हम जाते हैं।

(जाना)

कृष्ण—जरूर जाओ वहां तुम्हारा गुरूर दूर होगा तब ब्रह्मानन्द भरपूर और छुपे हुए रूप के पहचानने का शऊर होगा—

सिद्ध बने नित साधि समाधि किये तप दिव्य विभूति कमाई,
एक जरा अभिमान भयो सब नष्ट भई जिम पाइ न पाई।
अंतर चक्षु खुले न रहे फिर कौन बनाय "कन्हाइ" कि "नाई",
सूझ पड़े प्रतिबिम्ब कहां जब फैल गई जल ऊपर काई।

(जाना)

अङ्क २ प्रवेश ४

दुर्योधन की शयन शाला

(दुर्योधन अर्द्ध निन्द्रा में है। कृष्ण महाराज नन्दानाई का रूप धारण करके आते हैं)

कृष्ण—यह भक्तों ने डाला है पाऊँ में फन्दा।
लिया है जो बहरूपयों का सा धन्दा॥
कहीं जाके बनना पड़ा है मुकुन्दा।
कहीं नन्दनन्दन कहीं नाई नन्दा॥
बचाना जो भक्तों को इलजाम से है।
न लज्जा किसी रूप या नाम से है॥

(खामोशी से दुर्योधन के सर में तेल डालते हैं)

दुर्योधन—नन्दा आ गया तू?

कृष्ण—जी महाराज।

(पाँव दबाता है)

गाना

बसमें हैं भगवान भगत के। बसमें०।
कपट बिना जिसने टेरा, उसने घेरा। बसमें०॥
कसाई था जो एक सदना, उस अधम का भाया बदना।
किया चलता मन्दा धन्दा न डर तू भी नन्दा नादान।

दुर्योधन—अच्छा जाओ।

कृष्ण—अब मुझे इस रूप से इस नाम से संतोष है।
भक्त निर्भय हो गया और क्रोध भी खामोश है॥

रूप के या नाम के बन्धन से जो आजाद हो।
नाई बनने से भला वह किस तरह नाशाद हो॥

(जाना और नन्दा का आना)

नंदा—(घबराये हुए स्वर में) क्षमा। अन्नदाता क्षमा। बस एक बार क्षमा। फिर कभी ऐसा नहीं करूंगा। मैं दंड के योग्य हूँ, मुझ से खता हुई। चूक हुई। मुआफ कीजिये।

(पैरों पर गिरता है)

दुर्योधन—हैं! हैं!! क्या है? अरे नन्दा क्या है?

नंदा—अन्नदाता मैं सौगन्द खाता हूँ कि मैं आलस्य करके नहीं रुका। भूल नहीं गया।

दुर्योधन—परन्तु···· ·······

नंदा—साधुओं की सेवा में······· ····

दुर्योधन—साधुओं की सेवा में?

नन्दा—हां महाराज साधुओं की सेवा में देर हो गई।

दुर्योधन—किसे देर हो गई?

नन्दा—मुझे देर हो गई।

दुर्योधन—तू बकता है?

नन्दा—महाराज! झूठ कहता हूँ तो मेरी सेवा निष्फल हो जाय।

दुर्योधन—तू पागल तो नहीं हो गया? अरे तू तो अभी मेरे पांव दबा कर, सर में तेल लगा कर गया है। यह क्या ख़ब्त समाया कि तुरत लौट आया?

नन्दा—मैं? नहीं महाराज, आप मुझे क्रोध से धमकाते हैं। मेरी खता को उल्टा कहकर समझाते हैं।

दुर्योधन—नहीं नहीं, यह देख मेरे बालों में तुरत की चिकनाई है।

नन्दा—और यह मैंने ही लगाई है?

दुर्योधन—हां तूने ही लगाई है।

नन्दा—आज ही?

दुर्योधन—आज ही, बल्कि अभी।

नन्दा—और पांव भी मैंने ही दबाये ?

दुर्योधन—हां तूने तूने।

नन्दा—इसी रूप से ?

दुर्योधन—इसी रूप से नहीं तो और किसी रूप से।

नन्दा—यही सूरत ?

दुर्योधन—यही सूरत, यही मूरत, यही सब कुछ।

नन्दा—(हँस पड़ता है) बस तो महाराज ! उछलिये, कूदिये, मगन हो जाइये। खजानों के दरवाजे खुलवाइए, साधुओं को बुलवाइये, उन्हें भोजन कराइए।

दुर्योधन—अरे दीवाने आखिर हुआ क्या ?

नन्दा—आप बड़े भाग्यशाली हैं।

दुर्योधन—नन्दा तू तो बिलकुल पागल हो गया। अरे कोई है (सेवक आया) जाकर दुश्शासन और शकुनी को बुला लाओ उनसे कहो कि नन्दा नाई दीवाना हो गया है। जल्द जाओ (सेवक जाता है)

नन्दा—स्वामी ! आप योगी हैं, आप यती हैं, आप ऋषी हैं, आप मुनि हैं, दण्डवत भगवन् दण्डवत। (पाँव पर गिर पड़ता है) जिन चरणों को साक्षात परमात्मा ने स्पर्श किया है उनकी रज मुझे नेत्रों से लगाने दीजिये।

दुर्योधन—आखिर इसका कारण ?

नन्दा—शङ्कर से सुर जाहि जपैं चतुरानन ध्यानन ध्रम बढ़ावें।
जाकि तलाशमें डोलतहैं मुनि जाहित योगि समाधि लगावें॥
शीश मुंडावत केश बढ़ावत देह गलावत जाहि न पावें।
ताहि सुयोधन यूं निरखे प्रभु नाई बने और पाँव दबावें॥
बोलो श्रीकृष्णचन्द्र की जय।

दुर्योधन—पकड़ो बेचारे ग़रीब को।

नन्दा—हो गया, बस आपको दर्शन हो गया।

दुर्योधन—दर्शन हो गया ?

नन्दा—कृष्ण को कृष्ण रूप में तो जमाने ने देखा है और बच्चा बच्चा देखता है परन्तु आपने चमत्कार के समय देखा तो बस साक्षात् दर्शन हो गया।

दुर्योधन—किसका दर्शन ?

नन्दा—जिसका रचा हुआ यह संसार है।

दुर्योधन—क्या बकता है नादान ?

नन्दा—हां हां महाराज मुझे साधु सेवा में रुका हुआ जान कर मेरे बदले आ गए मेरे कृष्ण भगवान्।

दुर्योधन—कृष्ण भगवान् ? अरे मूर्ख कृष्ण सृष्टि-कर्ता है या एक मामूली इन्सान ?

नन्दा—राजन ! कंश और चाणूर जैसे पहलवानों को हँसते हँसते मार डालना, पूतना राक्षसी का स्तन की राह दम निकालना कंस जैसे दुष्ट को मारना, बनासुर, नकासुर, बकासुर, को संहारना, क्या मामूली इन्सान का काम है ?

दुर्योधन—ओ हो, तू तो पक्का वेदान्ती है, कौन कहता है कि नन्दा हज्जाम है ? परन्तु मूर्ख वह मेरी आज्ञा बग़ैर यहाँ क्योंकर आ सकता है ?

नन्दा—आज्ञा की उसे क्या जरूरत है ?

वह तो हर दम हर घड़ी हर वक्त रहता है पास।
पास क्या एक एक परमाणु में है उसका निवास॥

दुर्योधन—अरे नास्तिक नइयड़ ! एक साधारण मनुष्य को ईश्वर बनाना चाहता है, क्या अभी मेरे हाथों यमलोक जाना चाहता है।

नन्दा—श्रीमान ! जिसने शङ्ख, चक्र, गदा, पद्म छोड़कर नन्दा नाई का रूप बनाया, मुझे आके क्रोध से बचाया, क्या वह

मारने से न बचायगा ? मेरी श्रद्धा, मेरी शक्ति मेरी प्रीति अगर सच्ची है तो वह गज को ग्राह से छुड़ाने वाला, द्रोपदी का चीर बढ़ानेवाला नङ्गे पांव दौड़ता आयगा।

दुर्योधन—अरे भोले बकवासी जबान रोक, क्योंकि तुझे बध करने में भी मेरे शस्त्रों को शोभा नहीं है।

क्यों मेरी तलवार से कहता है चल और वार कर।
खुश न होगा शस्त्र मेरा एक मच्छर मार कर॥

नन्दा— मेरे सर तक आयगा हथियार जितनी देर में।
लाख ढालें वह बना सकता है उतनी देर में॥

दुर्योधन—दुश्शासन उठाओ वह गदा और मार मार कर करदो पाजी का बिछौना।

(दुश्शासन मारना चाहता है फौरन विष्णुगण विमान लेकर उतर आते हैं)

गण—सावधान, कहीं हाथ छोड़कर लज्जित न होना, उठो भक्त-राज विष्णुलोककी शोभा बढ़ाओ विमानपर विराज जाओ।

नन्दा—बोलो श्री कृष्णचन्द्र की जय !

(नन्दा—"राधाकृष्ण राधाकृष्ण" कहता विमान पर बैठ जाता है और विमान उड़ जाता है सब हैरान रह जाते हैं)

दुर्योधन—शोक महाशोक जरा सी भक्ति और विष्णुलोक !

शकुनी—वह भी बे रोक टोक।

दुश्शासन—यह भी तो न देखा कि एक शूद्र है नीच नाई है।

शकुनी—इस पर भी लोग कहते हैं कि परमात्मा न्यायी है।

दुश्शासन—दो भिकारियों को रोटी खिलाई और स्वर्ग की कुञ्जी हाथ आई।

दुर्यो०—ओ प्रपञ्ची कृष्ण !

मैं खूब जानता हूँ जो तेरी मुराद है।
जो कुछ भी है फसाद वह तेरा फसाद है॥

दुश्शासन—तो पांडवों से पहले कृष्ण हो को ठिकाने लगाना चाहिए।

(एक दरबान आता है)

दरबान—नरनाथ! श्रीकृष्णचन्द्र महाराज विराट नगरसे पधारे हैं।

दुर्यो०—आने दो। ये मुंह मांगी मुराद मिली।

शकुनी—मेरी राय है कि आज इस खटकते हुए कांटे को भी तलवे से निकाल दो। अगर आपके बखिलाफ आधी बात भी कहे तो बांध कर डालदो।

दुर्यो०—देखा जायगा तुम जाओ।

(श्रीकृष्ण का आना)

कृष्ण—क्यों सुयोधन नरेश! कुशल हो?

दुर्यो०—बैठो।

कृष्ण—(खुद) सभ्यता का पहला नमूना (प्रकट) आपके भ्राता और पिता माता सब कुशल हैं?

दुर्यो०—तुम कहां से आ रहे हो?

कृष्ण—(खुद) जोशे गजब में देखिये खूबी बयान की।
पूछी ज़मीन की तो कही आस्मान की॥
(प्रकट) मैं विराट नगर से आ रहा हूँ।

दुर्यो०—ऊँहूँ! तो क्या तुम वहीं थे?

कृष्ण—नहीं यह मेरा दुर्भाग्य है कि तुम्हारी विराट को एक लाख गौवें हर कर फिर उदारता पूर्वक त्यागना, अकेले उत्तर के सामने से उसे बच्चा जानकर भागना मेरे देखने में नहीं आया और उन्होंने संग्राम समाप्त होने पर मुझे बुलाया।

दुर्यो०—क्यों?

कृष्ण—तुम्हारे पास भेजने के लिए।

दुर्यो०—मुझ से क्या काम है ?

कृष्ण—धर्मराज युधिष्ठिर की इच्छा है कि भाई भाइयों में सन्धी हो जाय तो अच्छा है।

दुर्यो०—भाई ! कौन भाई ? किसका भाई ? कैसा भाई ?

कृष्ण—अस्तु जो कुछ हो, परन्तु वो कहते हैं कि तेरह (१३) वर्ष वन में गुजारने की शर्त पूरी हो चुकी।

दुर्यो०—पूरी हो चुकी हो तो तेरह वर्ष वन में और गुजारें क्योंकि हमने उन्हें मुद्दत के अन्दर पहचान लिया है।

कृष्ण—कब पहचान लिया है ?

दुर्यो०—इससे क्या मतलब कह दिया कि पहचान लिया।

कृष्ण—तुमने कह दिया और दूसरों ने मान लिया।

दुर्यो०—पहले तुम अपनी पदवी जताओ फिर कोई बात जबान पर लाओ। तुम प्रतिपक्षी हो या दूत हो ? क्या हो ?

कृष्ण—मैं कुछ भी नहीं और सब कुछ हूं। परन्तु इस समय एक दूत के समान हूँ इसलिये·······

दुर्योधन—क्या कहना चाहते हो ?

कृष्ण—बस यही कि जब तक गांडीव धनुष अर्जुन के हाथ में आये, जब तक भीम अपनी गदा उठाये, जब तक नकुल और सहदेव के हाथ अपने २ भालों पर पहुँचे, जब तक राजा विराट और राजा द्रुपद और हां राजकुमार उत्तर इनके पंजे तथवारों और ढालों पर पहुँचें उससे पहले सुलह करलो।

दुर्योधन—यह बातें दूत की मर्यादा से बाहर हैं, तुम हमें संदेशा नहीं पहुँचाते हो बल्कि उपदेश करते हो।

कृष्ण—परन्तु शोक है कि तुम उपदेश के पात्र भी नहीं हो। राजनीति का उलङ्घन करके दूत का अपमान करते हो यह

अधर्म है। मैं बात कहता हूँ और तुम मदान्ध होकर कुछ का कुछ उत्तर देते हो, शर्म है!

दुर्योधन—संदेशे के उपरान्त बोलना यह अधम दूतों का काम है।

कृष्ण—राजनीति को तोड़ने वाले के सामने मर्यादा में रहना मूर्ख दूतों का काम है।

दुर्योधन—ऐसे दूतों का इनआम हमेशः अपमान है।

कृष्ण—रावण की सभा में जो अङ्गद दूत का अपमान हुआ था कुछ उसका भी ध्यान है?

दुर्योधन—हरेक दूत अङ्गद नहीं हो सकता।

कृष्ण—इसीलिये मैं दूत पद को छोड़ कर तुम्हें उपदेश करता हूँ कि शकुनी और दुश्शासन जैसे खुशामदियों, प्रपंचियों का विश्वास न करो, इन लकड़ी की तलवारों से मैदान जीतने की आस न करो।

दुर्योधन—लकड़ी की तलवारें ? भूल है भूल।

ये तलवारें नहीं लकड़ी की हैं फौलाद के टुकड़े।
उड़ायंगे किसी दिन पांडु की औलाद के टुकड़े॥

कृष्ण—उड़ायंगे भला क्या खाक ये फौलाद के टुकड़े।
कि खाते हैं फकत "जीहाँ", 'बजा इर्शाद' के टुकड़े॥

बस इस मिथ्या अभिमान को छोड़कर ईश्वर से प्रार्थना करो कि जिस समय तुम प्रणाम करते सर झुकाए राजा युधिष्ठिर के सामने जाओ वो राज-कुंजर अपने दोनो हाथों से तुम्हें ग्रहण करे।

दुर्योधन—मैं सर झुकाए हुए जाऊं ? किसके आगे ? युधिष्ठिर के अगे ?

सहबाज भी झुकते हैं कहीं चील के आगे,
शिकरा कोई आजिज़ हो अबाबील के आगे।

दरिया को गरज़, जाय जो इक झील के आगे,
झेंपेगा न सूरज कभी क़न्दील के आगे।
मतलव को बने भाई नया मेल निकाले,
वो तिल ये नहीं जिनसे कोई तेल निकाले।

कृष्ण—कुरुवंश के कलंकित चन्द्रमा ! क्यों मुसीबत को मेहमान बुलाता है, क्यों ब्याज़ की लोभ में मूल भी गँवाता है ? जिस शरीर को सुख पहुंचाने के लिए पराया राज भी दबाया, कहीं यह शरीर और राज दोनों ही हाथ से न जाते रहें।

दुर्यो—इस उपदेश को अपने पीताम्बर में बान्ध रक्खो, गोपियों से भीक मांगने के काम आयगा।

कृष्ण—फूले फले न बेत, यदपि सुधा बरसे जलद।
मूरख हृदय न चेत, जो गुरु मिलहि बिरंचि शिव। (तुलसी)
सुयोधन ! अभी तुम्हारे माता पिता जीवित हैं उन्हें पुत्रशोक में घुलाने का उपाय न निकालो। कल्याण इसी में है कि पाण्डवों का हिस्सा दे डालो।

दुर्योधन—एक बारीक सुई की नोक जितनी जमीन छेद सकती है उनके लिए इतनी भी ख़ाली नहीं है। जितनी पृथ्वी पर वो पांव रखे खड़े हैं, कुछ रोज़में वह भी मिलने वाली नहीं है।

कृष्ण—तो इसका अन्जाम ? दुर्यो०—बस संग्राम।

कृष्ण—तो क्या मैं इसी तरह जाकर कह दूं ?

दुर्योधन—जाकर कहने को भूल जाओ और जब तक पाण्डव और उनके हिमायती यमपुरी न पहुंच लें तुम हमारे क़ैदख़ाने की हवा खाओ।

(दुर्योधन कृष्ण को पकड़ना चाहता है। फौरन दरोदीवार से हजारों कृष्ण प्रकट हो जाते हैं। यह देख कर दुर्योधन हैरान रह जाता है। टेबलो

अङ्क २ प्रवेश ५

(दस रोज से कौरव और पाण्डव की लड़ाई जारी है दस दिन का परिणाम देख कर द्रौपदी चिंताग्रस्त है)

द्रौपदी—आये समर से नहिं प्रण धनी।

कुछ ना पार बसाय, रुण्ड मुण्ड पड़त धरनी पर हाय,
लाखन योद्धा अबतक कट गये, बाकी रहे सो कितने रहे।
अब तो व्याकुल प्राण हैं हमरे कैसी आन बनी॥
तुल रही है काट पर दादा की तेरी आबदार।
क़ट गए एक एक दिन में योद्धा दस दस हजार॥
धार उस तलवार की है या कि है गंगा की धार।
जिसके सर तक आयी उसका हो गया बेड़ा ही पार॥
तैरते हैं हाथ, सर, कटकर लहू की नहर में।
जैसे कछुवे, मछलियां भागीरथी की लहर में॥

आज नौ रोज हुए भीष्मपितामह प्रातः काल से हथियार संभालते हैं और सूरज छुपने से पहले २ दस हजार वीरों को मार डालते हैं।

शोक में वीरों के जामे हो गए अक्सर सियाह।
शोक में रखने लगा अम्बर भी पीताम्बर सियाह॥
चन्द्रमा को देखिए एक दाग है मुंह पर सियाह।
रात आती है तो मुंह पर डालकर चादर सियाह॥
यह मेरी बिनती कोई कह दे मेरे भगवान को।
आंच कुछ पहुंचे न पांचों भाइयों की जान को॥

(कृष्ण महाराज का आना)

कृष्ण—सावधान, द्रौपदी ! सावधान।

दूर ही से सुन लिया मतलब तेरी गुफ़तार का।
लग रहा है दो दिलों में तार इक बेतार का॥

कुछ हुआ खटका फिदाये जज्बे कामिल ने सुना।
दिल का जो मजमून था दिल ने कहा दिल ने सुना।

घबरा नहीं तुझे जो अपने सुहाग की चिन्ता है मैं उसे निर्मूल बनाता हूँ। जिस भिष्मपितामह से पाण्डवों के नाश का भय है उसी सत्य वक्ता बालब्रह्मचारी से तुझे सौभाग्यदान दिलाता हूँ। द्रोपदी—उपकार भगवन् उपकार।

कृष्ण—आओ, डेरों में आओ और जिस रीति से समझाऊँ उसी रीति से भीष्मपितामह के पास जाओ। द्रोपदी-जो आज्ञा।

(द्रोपदी का जाना दुर्योधन और भीष्मपितामह का आना)

भीष्म—तो क्या तू इसमें कुछ शंका करता है?

दुर्योधन—नहीं दादा साहब मैं यह शंका नहीं करता कि आप उन पर दया करते हैं। मेरी आंखों के सामने आपने पाण्डवों के खून के नाले बहाये हैं। नौ रोज से रोज दस दस हजार योद्धा प्रेतलोक पहुँचाये हैं। भीष्म—परन्तु?

दुर्योधन--परन्तु पाञ्चाल देश के राजकुमार शिखंडी के सामने...

भीष्म—तुझ से पहले ही कह दिया था कि मुझे सेनापति बना या न बना, मैं शिखंडी के सामने नहीं लड़ूंगा।

दुर्योधन—अच्छा आप उसके सामने युद्ध न कीजिये परन्तु हमीं उसे मार डालें, ऐसी सलाह तो दीजिये।

भीष्म—सलाह? बस दुर्योधन खामोश. मेरी सलाह और सम्मति तेरा हक नहीं है, मैंने तुझे अपनी शक्ति और पूरे पराक्रम के साथ लड़ना दिया है और तू मुझ से बातों ही बातों में पाण्डवों का हिस्सा सलाह भी लेता है, खबरदार ऐसे विश्वास घात की आशा मुझ से न रखना।

दुःख कितना ही पड़े कैसा ही मुझ पर कष्ट हो।
वह न होगा काम जिसमें धर्म मेरा नष्ट हो॥

(दोनों का आना) ——

अङ्क २ प्रवेश ६

शिवालय

(मन्दिर में भीष्मपितामह संध्या करते हैं चेता चमार का बेटा सेवा पानी भरने आता और सन्देह करता है)

सेवा—(भीष्म पितामह को देख कर) ओहो बड़े महाराज पूजा में बैठ भी गए। आरती का समय हो गया। जो चमारों वाले कुएं पर जाऊंगा तो और भी देर होगी, इसी कुए में से एक डोलची भर लूं (डरता डरता आगे बढ़ता है) कोई देख लेगा तो मारेगा (कुछ सोचकर) कुछ नहीं, काहे को मारेगा।

कह दूंगा कर जोड़ कर, जो मारेंगे लोग।
अभी लगाना है हमें, नारायण का भोग॥

(द्रोणाचार्य की मुंह बोली बेटी शान्ता पानी लेने आती है)

शान्ता—कौन है रे कुएं पर ?

सेवा—मैं हूँ जी सेवा।

शान्ता—कौन सेवा ?

सेवा—चेता चमार का बेटा।

शान्ता—किस ने कहा तुमसे इस कुएं पर चढ़ने को ?

सेवा—किसी ने भी नहीं।

शान्ता—तो मुए ढेड़ तेरी आँखें फूट गई दीखता नहीं, यह मन्दिर का कुआं है या चमारों का ?

सेवा—यह तो ठीक है पर पानी चमारों के लिये नहीं चाहिए था।

शान्ता—चमारों के लिए नहीं चाहिए था तो क्या चमड़े की डोलची से ब्राह्मणों को पिलाना है।

सेवा—नहीं बाई ठाकुर जी को भोग लगाना है।

शान्ता—ठाकुर जी की ? क्यों नहीं, अब तो गडरिये भी प्रयाग को जाने लगे। ढेड़, चाण्डाल, भङ्गी, चमार सब ठाकुरजी को भोग लगाने लगे।

सेवा—भगवान के लिये जल्दी से एक डोलची भर लेने दो।

शान्ता—जा, जा वह रहा चमारों का कुआं वहां से भर लेजा। और खबरदार जो फिर से ठाकुर जी का नाम बदनाम किया तो जबान भी निकलवा ली जायगी, और सारे कुन्वे को फांसी दी जयगी। मुए नीच कहीं के, भोग लगाएंगे, भोग लगाएंगे। हैं न ठाकुर जी तुम्हारी सड़ी हुई कढ़ी खिचड़ी के भूके। अरे चांडान उनका तो भङ्गी भी तुम्हारे घर की तरफ मुंह करके न थूके।

सेवा— पर बाई ! है राम दुहाई हम तो रोज भोग लगाते हैं भगवान हमारी कढ़ी खिचड़ी खूब पेट भरके खाते हैं।

शान्ता—चल, चल।

गाना

सेवा—भला होगा गरीबों पे राखो दया।

शान्ता—अरे जारे कमीने बेहया,
समझाऊँ अभी पिटवाऊँ अभी ?

सेवा—करो करो तुम चाही।

शान्ता—कैसी २ ढिठाई दिखाई मुझे,
अरे ढेड़ जरा नहीं लाज तुझे।

सेवा—हुई खता लो जूते गिन गिन कर मारो।
भला होगा।

(द्रौपदी का आना)

द्रौपदी—क्यों बीबी शान्ता क्यों लड़ रही हो ? इस चमार के से क्यों झगड़ रही हो ?

शान्ता—देखो न रानी जो ढेड़ का बच्चा चमड़े की डोलची इस मन्दिर के कुएं में फांसता है।

सेवा—महारानी जी के जै जै कार हो। कुछ गुलाम की भी सुन लेना जो मैं झूठ बोलूं तो भगवान हमारी खिचड़ी को मुंह न लगायें हमारी कढ़ी कभी न खायें। आरती का समय न होता तो मैं अपने चमारों ही वाले कुएं से पानी भर लाता, जल्दी के मारे यह अपराध हुआ, माफ कीजिये।

द्रोपदी—क्या तुम्हारे यहां भी भगवान् का पूजन हुआ करता है?

सेवा—महारानी जी रोज होता है।

शान्त—देख लो चाण्डाल की बातें, फिर चमड़े की डोलची से भगवान का मुंह धोता है।

द्रोपदी—बहन शान्ता! जरा शान्ति में काम लो क्योंकि इस झगड़े का रहस्य बड़ा गम्भीर है।

शान्ता—वह क्या?

द्रोपदी—भला निराकार, निर्लेप और एक रस ईश्वर का भजन करना क्या किसी की मौरूसी जागीर है?

शान्ता—निराकार, निर्लेप और एक रस?

द्रोपदी—हां हां।

जो जाप करें हरका, हरके हैं वही प्यारे।
तलवार उसी की है, मैदान में जो मारे॥
नीचों पे हिक़रत से, कसना नहीं आवाजा।
रस्ते हैं यहाँ लाखों, वहां एक है दरवाजा॥

गाना

शाह की औलाद है, या लाल है कंगाल का।
है ऋषी सन्तान, या बेटा किसी चण्डाल का॥
जात का, या कौम का, पुरसां वहां कोई नहीं।
पूछ है कर्मों की, सारा मान है आमाल का॥
सब हैं बालक एक पिता के उजले हैं या मैले;
नजर पड़ा जो लायक बेटा पुचकारत उर लाके

शान्ता—हां यह बात है ?

द्रौपदी—अगर कोई ब्राह्मण पतित होकर कसाई का कर्म करने लगे तो वह ब्राह्मण माना जायगा या कसाई ?

शान्ता—कसाई।

द्रौपदी—तो गोया जात पात और वर्ण व्यवस्था जन्म के अधीन नहीं, कर्म के अधीन ठहराई। शान्ता—हां।

द्रौपदी—तो इस का जन्म चमार के घर देख क्यों शंका आई ब्राह्मण नीच कर्म करने से नीच हो जाता है, तो नीच, उच्च कर्म करने से उच्च पद क्यों न पाय ? चमार होने के कारण इसे धिक्कारा जाय यह कहां का न्याय है ? तथापि मैं तुम्हारा दिल नहीं दुखाती हूँ। लो मैं इसे पानी देकर झगड़ा चुकाती हूं।

(द्रौपदी पानी भर देती है सेवा जाता है)

शान्ता—महारानी जी मैंने बड़ी भूल की, जो जरासी बात इतनी तूल की।

न भरने ही दिया पानी, न भर कर ही दिया पानी।
मुए अभिमान से बुद्धि पे, मेरी फिर गया पानी॥
बने सब पंच भूतों से हैं, क्या वह था निरा पानी।
वही आकाश अग्नि थे वही मिट्टी हवा पानी॥
लताड़ा मुफ्त बेचारे को अपनी बे दहानी से।
खिंचा जाता है दिल उसकी तरफ अब मेहरबानी से॥

द्रौपदी—अच्छा तो आइन्दा मेहरबानी करना।

(शान्ता पानी भर कर ले जाती है और द्रौपदी भीष्म पितामह का पूजन करती है)

भीष्म—सौभाग्यवती हो पुत्री तेरा सौभाग्य अचल रहे।

(द्रौपदी जाती है दूसरी तरफ से भानुमति आती है और भीष्मपितामह का पूजन करती है)

भानुमति—(खुद) यह भी स्वामी को अच्छी सूझी कि सौभाग्य दान लेने को ऐसे सत्यवादी महात्मा के पास मुझे भेजा है जिनका आशीर्वाद हमेशा फलता है। (पूजन करना)

भीष्म—कौन है ?

भानुमति—आपके आशीर्वाद को अभिलाषी भानुमति।

भीष्म—भानुमति ? भानुमति—हां महाराज।

भीष्म—तू दुबारा क्यों आई है ? अभी तो यहां से गई थी फिर आने का कारण ?

भानुमति—नहीं महाराज मैं पहले नहीं आई।

भीष्म—तो मेरा पूजन किसने किया था ? मैंने अखण्ड सौभाग्य का आशीर्वाद किसको दिया था ?

भानुमति—परमात्मा जाने महाराज कौन आई और कौन जुल दे गई।

भीष्म—(कुछ बिचार के बाद) मैं समझा, इसमें जुल कुछ नहीं है वह एक ही प्रसाद था जिसे विधाता ने द्रोपदी के भाग्य में लिखा था निश्चय वही आई और ले गई।

भानु०—तो महाराज मुझे भी अखण्ड सौभाग्य का दान दीजिए।

भीष्म—कर्म से मिलता है सब, है कर्म की महिमा अपार।
कोई कुछ देता है, या लेता है वह कर्मानुसार॥
जो समय जाता रहा, आता नहीं फिर जीनहार।
खांड के प्याले में पी सकते हैं पानी एक बार॥

भानु०—तो क्या महाराज आपकी ड्योढ़ी से निराश होकर जाय भिखारी ? भीष्म—लाचारी—

मुकद्दर के सिवा दूं दान, यह ताक़त कहां मेरी।
तेरी तक़दीर में होता, तो कह देती ज़बां मेरी। (जाना)

भानु०—(ना उम्मेदी से जाते जाते)
जो मरना हो प्यास से, पायें क्योंकर नीर,
प्यासे ही फिर जात हैं, आकर गङ्गा तीर। ——

अङ्क २ प्रवेश ७

द्रोणाचार्य का मकान

(द्रोणाचार्य ठाकुर पूजा का सामान कर रहे हैं शान्ता पानी की झारी लेकर आती है)

द्रोणाचार्य--शान्ता ! आज तो कुएं पर बहुत देर लगाई ?

शान्ता—हां पिताजी अगर पूजा का समय न होता तो मैं और भी देर लगाती और द्रोपदी जी से पूरा ही पूरा उपदेश सुनकर आती ।

(एक चेला आता है)

चेला—गुरुजी महाराज ! राजा दुर्योधन का सवार कुछ कहने आया है ।

द्रोणाचार्य—अच्छा बेटा शान्ता ! आज ठाकुर जी की आरती तुम करलो । मैं जवाब देकर आता हूँ, देखो ये फूल हैं, यह चन्दन है, यह मिसरी, यह घण्टी इत्यादि, सब मौजूद हैं पहले आवाहन करना, फिर फूल चढ़ाना फिर भोग लगाना ।

शान्ता—(खुद ब खुद) फूल चढ़ना. भोग लगाना, किसको ? द्रोपदी जी तो कहती थीं कि ईश्वर निराकार, निर्लेप और एक रस है जो यह बात सच है तो यह सब झमेला अबस है ।

गाना

अजब हैरान हूँ भगवान तुम्हें क्योंकर रिझाऊं मैं
कोई वस्तु नहीं ऐसी जिसे सेवा में लाऊं मैं ।

करूं किस तरह आवाहन, कि तुम मौजूद हो हर जा,
निरादर है बुलाने को अगर घण्टी बजाऊं मैं। अजब०
तुम्हीं हो मूरती में भी तुम्हीं व्यापक हो फूलो में,
भला भगवान पर भगवान को क्योंकर चढ़ाऊं मैं। अजब०
लगाना भोग कुछ तुमको यह इक अपमान करना है,
खिलाता है जो सब संसार को उसको खिलाऊं मैं। अजब०
तुम्हारी ज्योति से रोशन हैं सूरज चन्द्र और तारे,
महा अन्धेर है तुमको अगर दीपक दिखाऊं मैं। अजब०
भुजाएं हैं न सीना है न गरदन है न पेशानी,
कि है निर्लेप नारायण कहां चन्दन लगाऊं मैं। अजब०

(दीवार फट जाती और कृष्ण भगवान चतुर्भुज स्वरूप से दर्शन देते हैं। शान्ता घबराती है। द्रोणाचार्य आते और देखकर हैरान होते हैं।)

कृष्ण—सावधान शुद्धस्वरूपा! सावधान।

(द्रोणाचार्य आते और देखकर हैरान होते हैं)

द्रोणाचार्य—कौन जगदीश्वर विष्णु भगवान! अहो भाग, अहो भाग्य, बोलो श्री कृष्णचन्द्र की जय।

(जय बोलकर साष्टाङ्ग दण्डवत करना)

राम को देखा और देखा कृष्णचन्द्र को भी,
दर्शन हुए हैं, वराह अवतार के।
अमृत के बांटने में मोहनी को देख लिया,
देखते ही होश उड़े गौरी करतार के॥
देखने को देखा है अनेकों ने अनेक बार,
ऐसे भाग्य खुले हैं परन्तु दो हि चार के॥
चतुर्भुजी स्वरूप सामने खड़े हैं आप,
शंख, चक्र, गदा, पद्म हाथों बीच धार के॥

कृष्ण—रूप कुछ मेरा नहीं, आकार कुछ मेरा नहीं।
देख पाये मुझको, यह शक्ति है किसकी आंख में॥
प्रेम बढ़ते ही वही तसवीर आती है नजर।
खींच दी है दिलने जो तसवीर जिसकी आंख में॥

द्रोणाचार्य—अरी शान्ता, यह पूजा की सामग्री तो सब योंहीं पड़ी है तूने तो हाथ भी नहीं लगाया। फिर ठाकुर जी को पूजा में क्या चढ़ाया?

कृष्ण—लौकिक पुजारी! शोक की बात है कि तुमने रिवाज को ग्रहण किया और तत्व की बात बिसारी। पान-फूल, चन्दन और मिसरी यह जो कुछ चढ़ावा है सब लोग दिखवा है वर्नः पूजन तो मन से होना चाहिये जो इस कन्या ने किया है और यह इसी के मानसिक पूजन का फल है कि हमने साक्षात दर्शन दिया है!

द्रोणाचार्य्य—धन्य हो परमात्मन्! धन्य हो। बेटा शान्ता! तेरे प्रताप से मेरा भी उद्धार हो गया, बेड़ा पार हो गया।
न लगती नाव मेरी उम्र भर आकर किनारे से।
तिरा भव-सिन्धु में लोहा भी लकड़ी के सहारे से॥

शान्ता - नहीं, मेरे पालक पिता!
मैं तो इक अज्ञान कन्या हूँ न कीजे यह विचार,
आप को दर्शन हुए हैं आप के कर्मानुसार।

द्रोणा०—(कृष्ण से) हैं भगवान! आपका यह क्या स्वरूप बना हुआ है, मुखारविन्द पर खिचड़ी लगी हुई है और कर कमल कढ़ी में सना हुआ है?

कृष्ण—यह विस्मय पैदा करने वाला निशान शान्ता के अज्ञान और हठ से बाकी रह गया।

द्रोणा०—भगवान! मैं नहीं समझा।

कृष्ण—अगर यह चेता चमार के लड़के को मन्दिर के कुएं से पानी भर लेने देती और वह जल्द आ जाता तो चेता

भक्त भोग लगाकर हाथ मुंह भी धुलाता, इधर शान्ता ने अपने शुद्ध भाव से ऐसी मार्मिक आरती गाई कि तत्काल मुझे इसी हाल में खींच लाई।

द्रोण०—चमार के घर से?

कृष्ण—हां, चमार के घर से, इसमें शंका की कौनसी बात है।
हम यह नहीं देखते कि कौन खिलाता है,क्या खिलता है—
भोग है सोने की थाली में, कि जामे-गिल में है,
देखते हैं यह कि कितना प्रेम इसके दिल में है।

द्रोण०—फिर भी महाराज वह एक नीच..........

कृष्ण—नहीं। नीच, नीच कर्म करने से होता है। याद रखना।

(कृष्ण का लोप हो जाना)

द्रोणाचार्य—आश्चर्य की बात है। ठाकुर पूजा की अधिकारी एक नीच जाति, यह बात तो कुछ समझ में नहीं आती।

शान्ता—द्रोपदी जी की राय है कि इस में कोई दोष नहीं है, परन्तु आपको तो साक्षात् भगवान के कहने पर भी सन्तोष नहीं है।

द्रोणाचार्य—सन्तोष क्या खाक हो। शूद्रों को ठाकुर पूजा का अधिकार नहीं है। इस पवित्र कर्म के लिये कोई भङ्गी या चमार नहीं है। अगर भङ्गी या चमार विष्णु भगवान की मूर्ती घर में रख कर चरणामृत पियेंगे तो क्या हम ब्राह्मण लोग जूतियाँ सियेंगे। मैं फुरसत मिलते ही राजा दुर्योधन से कह कर उस चमार पकड़ बुलवाऊंगा और उस की पूजा का सिंहासन नदी में फिकवाऊंगा।

जाना

शान्ता—असर उपदेश का क्या हो यहां शंका है जब मन में।
दिखाई मुंह कहां से दे जमा है मैल दर्पन में॥

—०—

अङ्क २ प्रवेश ८

रणभूमि का एक कोना

(युधिष्ठिर, अर्जुन और कृष्ण का आना)

युधिष्ठिर—भला भगवन् ! जी किस तरह न छूट जाय ? हिम्मत क्यूंकर न टूट जाय ? जिस तरह हाथी कमल समूह को मर्दन करता है उसी प्रकार भीष्मपितामह नौ रोज से हमारी सेना को कुचल रहे हैं। उनके अमोघ बाण हमारे दल को दल रहे हैं।

अर्जुन—क्रोध रूप यमराज को जीत लेना आसान है, वज्रधारी इन्द्र को जीतना आसान है, पाशधारी वरुण को जीतना आसान है, और गदाधारी कुवेर को जीतना आसान है, परन्तु दादा साहब को जीतना कठिन ही नहीं असम्भव है।

कृष्ण—देखा ? ब्रह्मचर्य्य का बल कैसा अपार है, बड़े २ देवताओं को जीतना आसान है परन्तु एक बाल ब्रह्मचारी को बुढ़ापे में भी जीतना कितना दुश्वार है। निश्चय जो गृहस्थ अपने प्यारे पुत्रों को गुरुकुल में विद्याभ्यास और वीर्य रक्षा कराते हैं वो उस बच्चे को अजेय और तेजवान बनाते हैं।

युधिष्ठिर—हमें कुछ नहीं सूझता कि क्या करें ?

कृष्ण—याद रक्खो बाल ब्रह्मचारी भीष्मपितामह जिन्दा हैं तो इसी तरह रोज तुम्हारा दल कटता रहेगा और सेना का बल घटता रहेगा।

अर्जुन—तो मानो दादा की ज़िन्दगी और हमारी हार, दोनों का एक ही अर्थ है ?

कृष्ण—और उनकी मौत, और तुम्हारी फ़तह, दोनों का एक ही अर्थ है ?

अर्जुन—तो धिक्कार है ऐसी फ़तह पर। दादा की ज़िन्दगी इस फ़तह से हज़ार गुनी कीमती है। इसलिए भगवन हम हार स्वीकार करेंगे परन्तु उनकी मौत नहीं चाहेंगे।

कृष्ण—तुम अज्ञानी हो। जिस पञ्च भूत का नाम भीष्मपितामह है, वह क्या है ? जीव और प्रकृति का मेल है, और यह दोनों अमर हैं इनका मर जाना क्या कोई बच्चों का खेल है ? क्या जीव के सम्बन्ध में तुमने नहीं सुना ?

युधि०—क्या ?

नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि नैनं दहति पावकः।

न चैनं क्लेदयन्त्यापो न शोषयति मारुतः। (गीता)

अर्जुन—क्या कहा महाराज। क्या कहा ?

कृष्ण— छेदें उसे यह दम नहीं हथियारों में।
जलता नहीं डालें अगर अङ्गारों में॥

पानी से न तर हो, न हवा से हो खुश्क।
मशहूर है यह बात समझदारों में॥

अर्जुन—ये बात है तो जैसा समय आयगा देखा जायगा।

कृष्ण—देखा जाना क्या आसान बात है ?

वो मार नहीं सकते उनको बड़े बड़े मरदाने हैं।
यह ताजा मोहनभोग नहीं, लोहे के चने चबाने हैं॥

युधिष्टिर—तो महाराज ! उपाय बताइये ।

कृष्ण—बस द्रौपदी के भाई शिखण्डी को आगे करके, अर्जुन ! तुम शस्त्र प्रहार करो ।

अर्जुन—इसमें क्या भेद है ?

कृष्ण—कुछ नहीं यह फिर दर्याफ्त कर लेना आओ सेना को जमाओ और शिखण्डी को सेनापति बनाओ ।

(सब गये)

—०—

सेनयोरुभयोर्मध्ये रथं स्थापय मेऽच्युत ।

अङ्क २ प्रवेश ६

बाण शय्या

(भीष्म पितामह की बाणशय्या के पास कौरव, पांडव का शोक)

शकुनी—क्या भयानक शाम है इक मौत का सामान है।

द्रोण०—बह रहा है वह रुधिर जो कौरवों की जान है।

युधि०—दादा साहेब हमारा जन्म सफल होने के लिए कुछ सेवा करने की आज्ञा कीजिये।

भीष्म—मुझे किसी सेवा की जरूरत नहीं है, हां मेरा सर लटकता है, कोई मुनासिब तकिया लगा दो।

(शकुनी अन्दर से मखमली तकिया लाता है)

दूर रक्खो, इसे मेरे सर से दूर रक्खो, तुम इस समय के तकियों को नहीं समझते।

अर्जुन—दादा साहेब! मैं आज्ञा पाऊं तो आपकी इच्छा के अनुसार और बाण-शय्या के योग्य तकिया लगाऊँ।

भीष्म—हां बेटा अर्जुन—

इतने वीरों में है बस मेरी नज़र तेरी तरफ।
देख ले, ये देखता है झुक के सर तेरी तरफ॥

अर्जुन—हां महात्मन्।

वीर की शय्या है युक्ती से सजाता हूँ इसे।
तीर जो चुटकी में है तकिया बनाता हूँ इसे॥

(गुरु और भीष्म के चरणों को प्रणाम करके बाण को जमीन में तिरछा छोड़ता है, बाण घूमकर सरके नीचे निकल कर तकिया बन जाता है)

भीष्म—दुर्योधन ! देखा ? वीरों के आराम और आराम की चीजों को वीर ही खूब पहचानते हैं।

द्रोणा०—फिर ऐसे कठिन निशाने पर विरले ही धनुष संधानते हैं।

निशाना लगाया है कैसी नज़र से।
लगे सरमें लेकिन न हो पार सरसे ॥

भीष्म—अर्जुन ! तुझे छाती से लगाने के लिये मेरी छाती पर तो जगह नहीं है ला अपना वह हाथ ला जिसने मेरे आत्मा को संतोष देने वाला काम किया है।

(अर्जुन हाथ देता है और भीष्म चूमते हैं)

मुझे प्यास लगी है।

दुर्योधन—लाओ रे, लाओ कोई गंगाजल लाओ।

(शकुनी पानी लाता है)

भीष्म—क्या है ?

शकुनी—जल।

भीष्म—ले जाओ ले जाओ, मेरी स्वर्ग यात्रा शुरू हो चुकी है, अब मैं मनुष्यों का छुआ हुआ जल नहीं पिऊंगा, सूरज उत्तरायण होने तक अमानुषीय जल के सहारे जिऊँगा।

दुर्यो०—तो महाराज इसका उपाय क्या किया जाय ?

भीष्म—अर्जुन !

दी है तेरे सुकर्म ने शक्ति महा तुझे।
मेरी यह प्यास तूहि बुझाये तो कुछ बुझे ॥

अर्जुन—जो आज्ञा।

ईश्वर के नाम से और आपके इक़बाल से।
जल अभी आता है ऊपर देखिये पाताल से ॥

(पृथ्वी को बाण से छेद कर जल निकालता है, वही जल भीष्म के मुंह में पड़ता है)

॥ टेब्लो ॥

(द्रोणाचार्य और दुर्योधन आते हैं)

द्रोणाचार्य—यह सब सच है परन्तु मेरा दिल बेकरार है, ऐसी हालत में सेनापति बनकर सेना से काम लेना दुशवार है।

दुर्योधन—दादा साहेब तो बाण शय्या पर पड़े हैं, अब आप के सिवा कोई ऐसा नहीं जो सेनापति होने के योग्य हो।

द्रोण०—जब तक उस चमार की पूजा जल में न डुबो दी जायगी, मेरे मन में स्थिरता न आयगी, अन्धेर तो देखिये:—

भरा जाने लगा भागीरथी का जल पखालों में।
चुने हैं भङ्गिनों ने पारिजातक पुष्प बालों में॥
हवन सामग्री रखने लगी दुनिया कपालों में।
सितम है होती है विष्णु की पूजा चाण्डालों में॥
अगर कर लेंगे हम स्वीकार इन कर्मों को नीचों में।
पड़ेंगे खाल के परदे शिवालय के दरीचों में॥

दुर्योधन—शान्त गुरु महाराज शान्त! चेता चमार की मजाल है कि आज से पीछे ठाकुर पूजा का दम भर सके, कौन ऐसा है जो आप की आज्ञा का उल्लङ्घन कर सके।

कोई उत्तर में अगर कह दे "नहीं" संसार में।
फिर ठिकाना ही नहीं उसका कहीं संसार में॥

(सेवक से) जाओ चेता चमार को मय उसकी ठाकुर पूजा के नदी पर बुलाकर लाओ।

(दोनों का जाना)

—०—

अङ्क २ प्रवेश १०

नदी

(दुर्योधन के हुक्म से चेता चमार अपनी भजन मण्डली साथ लेकर गाता हुआ दाखिल होता है ठाकुर पूजा भी एक के हाथ में है।)

गाना

चमार—ऐसो जी राम नाम रसखान ।

मूरख या को कभी न पीवें । पीवें चतुर सुजान । ऐसो जी०
नारद ने सारद ने पियो याको बोल बोल,
बालमीक व्यास जी ने पियो याको तोल तोल, हरे ।
सनक सनन्दन ने पियो याको डोल डोल पारवती शंकर ने
पियो नित घोल घोल, रोल रोल पियो हनुमान । ऐसो जी०

दुर्योधन—चेता भक्त कुछ खबर है ! कि हमने तुझे यहाँ क्यों बुलाया है ?

चेता—अन्नदाता ! मेरा सौभाग्य खैंच लाया है (मूर्ति के आगे) वाह त्रिलोकी नाथ ! तुम्हारी महिमा अपार है,जिस छत्रपति महाराराज के दरबार में बड़े २ अमीरों का पहुंचना दुश्वार है क्या उसके सामने खड़े होने योग्य यह चेता चमार है ।

कहाँ यह मुंह कि पहुँचे कोई मुझसा नीच गद्दी तक ।
तुम्हारी जूतियों से लग के पहुँची कीच गद्दी तक ॥

द्रोणा०—यह ढोंग छोड़ और जिस कारण तुझे बुलाया है उसे मालूम कर ।

चेता—हाँ हाँ महाराज ! मैं समझता हूँ, हमारे राजा जी का मन हरिकीर्तन देखने को चाहा होगा, मैं अभी बड़े सुन्दर सुन्दर भजन गवाऊँगा।

सेवा—मैं भी गाऊँगा, नाचूंगा और भगवान को रिझाऊँगा—

हैं बड़े प्रसन्न स्वामी अपने प्यारे बाल पर।
नाचने लगते हैं मेरी खंजरी की ताल पर॥

द्रोणा०—साँप का बेटा सपोला, यह भी बोला तो ज़हरीली ही बोला।

चेता—गाओरे गाओ "अब मोरा"

गाना

सब चमार—

अब मोरा हरि नाम सों नेह ....

द्रोणा०—चुप रहो हरि नाम को अपवित्र करने वाले भांडो ! चुप रहो, क्योंरे चेता तुझे ठाकुर पुजा की आज्ञा किसने दी है ?

चेता—महाराज आप जैसे गुरुओं ने ?

द्रोणा०—हम जैसे गुरुओं ने ?

चेता—हाँ देवता, पानी सोतों के रास्ते कुएँ में आता है। कुएँ से घड़े में, घड़े से नहाने धोने के काम में लिया जाता है, तो वहाँ से बहकर मोरी के कीड़ों की प्यास भी बुझाता है।

द्रोणा०—इस उदाहरण का मतलब ?

चेता—वेद जो ईश्वर का ज्ञान है, गुप्तरूप से ऋषियों के हृदय में आया, ऋषियों ने मनुष्यों पर जहाँ जहाँ उपदेश किया तो मुझ जैसे नीच ने भी सुन लिया।

दुर्योधन—(चमारों का झण्डा देखकर) यह जण्डे पर क्या लिख छोड़ा है ?

सेवा—**यथेमां वाचं कल्याणी**

चेता—**मावदानिजनेभ्यः** (यजुर्वेद, अ० २६ मं० २)

दुर्योधन—ये तुझको न छोड़ेंगे ?

होश कर बेहोश क्यों भूला है मिथ्या मोद में।
क्या उछल कर जलसे आजायेंगे तेरी गोद में॥

चेता—अजब नहीं। पृथ्वीनाथ आजब नहीं, यह ऐसे ही दयाल हैं ऐसे ही कृपाल हैं।

दुर्योधन—मूर्ख तू नादान है जो असम्भव बात पर इतना अभिमान है।

चेता—आपकी जूतियों की खाक गरीब चेता, जब कुछ जवाब नहीं देता, बस इतना मांग लेता है कि यह मुकद्दमा ठाकुर जी ही के दरबार में भेज दिया जाय। भगवान आप ही इसका न्याय चुकायेंगे मैं सिंहासन जल में फेंक देता हूं फिर गुरुजी महाराज और मैं दोनों बुलायेंगे, वो जिसके होंगे उसके पास आयेंगे।

दुर्योधन—जल से निकल कर ?

चेता—हां मां बाप, जल से निकल कर।

बात ही क्या है निकल आना नदी में नीर पर।
ये निकल आये थे जब लोहे का खम्भा चीर कर॥

दुर्योधन—और यह भी यकीन है कि तेरे ही पास आयेंगे ?

चेता—अन्नदाता मैं गुरु महाराज से लाग नहीं कर सकता, हंस का मुकाबिला काग नहीं कर सकता, वो कौन हैं ? ब्राह्मण विष्णु भगवान ने इन की लात भी सही है, और मैं कौन हूँ, एक नीच चमार, जिसकी बात भी कोई नहीं सह सकता।

गुरूजी के भवन में भोग की हर चीज प्यारी है।
मेरे घर में कढ़ी खिचड़ी है वह भी वेबधारी है॥

इधर है डोल चमड़े का, उधर सोने की झारी है।
वहां तकिये में मखमल. यहां रांपी सुतारी है॥
मगर अब देखिये शक्ती है भक्ती में कि रस्मों में।
जनेऊ में बन्धे भगवान या चमड़े के तस्मों में॥

दुर्योधन—द्रोणाचार्य से मशवरा करता है कि यह शर्त कबूल करें या न करें।

द्रोण०—कुछ परवाह नहीं आप भय न कीजिये।

न जायेंगे कभी तज कर सपूतों को कपूतों में।
बंधेंगे तो हमारे बांयें कांधों के सूतों में॥
छुयें इनको कहां पाकीजगी इतनी अछूतों में।
लगायेंगे भला भगवान क्यों कर भोग जूतों में॥
कहां सोने के दीपक उनमें रोशन मुश्को संदल का।
कहां वह आरती में तेल जलना नीम के फल का॥

चेता—कुछ ध्यान रहे बलधाम पिता,
इस दीन दुखी अति दुर्बल का।
जिन नैनन में छवि है तुमरी,
उनमें नहिं बिन्दु फिरै जल का॥
बढ़ जाय न हाय कहीं दिल में,
अब दर्द जु है हलका हलका।
यह जीवन जाम लबालब है,
कुछ ठेस लगी अरु ये छलका॥

दुर्योधन—बस यह विलाप घर जाकर करना, फेंक दे सिंहासन जल में।

चेता—(मूर्ती से)

विदा हो जाओ स्वामी जाओ अब पावन करो जल को।
पर इतना याद रखना बस कोई छिन को कोई पल को॥

(सिंहासन जल में डालना)

द्रोणा०—हट जाओ, हम इस अशुद्ध स्थान को शुद्ध करके भगवान को बुलाते हैं और देखते रहो प्रार्थना के साथ ही वो किस तरह हमारे पास आते हैं।

(जल छिड़कना)

अपवित्रः पवित्रो वा सर्वास्थां गतोपि वा।
यः स्मरेत्पुन्डरीकाक्षं सबाह्याभ्यन्तरः शुचिः॥

गाना

नमो नलिननेत्राय, वेणुवाद्य विनोदिने।
राधाधरसुधापान शालिने बनमालिने॥
नवस्तुभ्यं भगवते पुरुषाय महात्मने।
वासुदेवाय कृष्णाय सात्वतां हतये नमः॥

दुर्यो०—आश्चर्य की बात है कि आपकी प्रार्थना निर्मूल हुई, बुलाने की मेहनत, आवाहन की क्रिया सब फ़जूल हुई।

द्रोणा०—राजन! सिंहासन का जल पर न आना यह आवाहन का तिरस्कार नहीं है, क्योंकि यह रीति से धातु का जल पर तैनरा सृष्टिक्रम के अनुसार नहीं है हमेशा पोली वस्तु जल पर तैरा करती है और ठाकुर जी की मूर्ति धातु की बनी हुई ठोस है इसके न तैरने में काहे का अफसोस है? हां हम ब्राह्मणों के आवाहन का मान नहीं है तो फिर ब्रह्मा तक बुलाने को शक्तिमान नहीं है।

दुर्यो०—चेता! जवाब क्यों नहीं देता?

चेता—दास बुलाने को तैयार है केवल आज्ञा का इन्तजार है।

दुर्यो०—अच्छा बुलाओ।

(चेता मस्त और दुखी होकर गाता है, पानी में "ज्वार" सा पैदा होता है पानी की लहरों पर मगर, मगर पर गङ्गा, गङ्गा के हाथ में ठाकुर जी का सिंहासन नजर आता है)

गाना।

चेता—महा अधम मैं नीच, वेद शास्त्र पढ़ा नहीं।
आवाहन नहीं याद, याद है तुमरी दया॥
भक्त जन जो जो तिरे, अधिकारी वो लोग थे।
तारो बिन अधिकार, जब तुम्हारा नाम है॥

(चेता पानी की तरफ देखकर खुश होता है और पुकारता है।

चेता—आये आये दास की टेर सुनते ही आये—
ग्राह के हाथ से गजफन्द छुड़ाने वाले।
सूर, हरिपाल, तिलोचन के तिराने वाले॥
एक ठोकर से अहिल्या को उड़ाने वाले।
नाई नन्दा को एवज पांव दबाने वाले॥
तेरे कुरबान मेरी टेर पे आने वाले।

गाना।

सब चमार—नाचो नाचो रे यार पीतम मेरे पास आ गए।
गरवा लगाऊँ कि सर पर बिठाऊं,
तन मन सभी डारूं बार। पीतम०

द्रोणाचार्य—(गंगा से) माता भागीरथी आप मेरा सन्देह दूर करें

गंगा—क्या संदेह है ?

द्रोणाचार्य—जिन ब्राह्मणों का तीनों काल और चारों युगों मे नाम है। विष्णु भगवान के सीने पर जिन ब्राह्मणों की लात का अब तक निशान है उनके शुद्ध आवाहन का तिरस्कार हो, और एक चमार की उलजुलूल प्रार्थना स्वीकार हो ?

गङ्गा—शान्त हो भारद्वाज के अंश! शान्त हो, होश में आ, और इस ऋषि समान चमार के आगे सर झुका।

द्रोणा०—माताजी इसका कारण ?

गंगा—बेटा तुझे मालूम नहीं कि तू कौन और यह कौन है।

द्रोणा०—मैं कौन हूं, ब्रह्मपुत्र, ऋषि सन्तान।

गंगा—ठीक, परन्तु अपनी ईर्षा और क्रोध से अपने आपको और भी पहचान, क्या परमेश्वर को अपनी जागीर समझना यही है ब्राह्मणों के चिह्न और ऋषियों के निशान ? तू निस्सन्देह ऋषि की औलाद और मुनिकुमार है।

द्रोणा०—परन्तु ?

गंगा—तेरे देहरूपी मन्दिर का मसाला संस्कार पूर्वक धर्म से संचय नहीं किया गया, इसी का सारा विकार है।

द्रोणा०—हैं ! हैं ! !

गंगा—हां हां, इस भवन में लगी हुई ईंटें माता के गर्भरूपी पजावे में पवित्र प्रेम की अग्नि से नहीं पकी हैं बल्कि इसका हर इंटोरा कामदेव की गरमी से तैयार हुआ है इसी कारण तू विद्वान होने पर भी भ्रम के जाल में गिरफ्तार हुआ है।

द्रोणा०—किस तरह ?

गंगा—रम्भा नाम की अप्सरा को देखते ही कामासक्त होकर तुम्हारे पिता का वीर्यपात न होता, तो यह उत्पात न होता अस्तु, इस विषय को जाने दो।

द्रोणा०—दुर्भाग्य, मेरा दुर्भाग्य ! माता मेरी खुली हुई आंखें बन्द थीं मुझे बन्द करके (लाजवाब करके) आपने खोलदीं, सच है शास्त्र के अनुसार गर्भाधान संस्कार करके जो औलाद पैदा की जाती है वही धर्म के सच्चे रास्ते को पाती है। मुझे जो इस भक्तराज के विरुद्ध इतना जोश था वह संस्कार न होने का दोष था।

गंगा—और यह जो सचाई ग्रहण करना और अभिमान का नाश है यह विद्या का प्रकाश है।

द्रोण०—मैं पक्षपात छोड़कर आप की आज्ञा सर चढाता हूँ। लीजिये इस अछूत के पाँव पर भी सर झुकाता हूँ।

गंगा—नहीं नहीं, अब इसकी जरूरत नहीं है, तूने झुकने का संकल्प किया और मुंह से कह दिया यह भी झुकने के समान है इस समय तू निरभिमानी होने से सच्चे अर्थों में ब्राह्मण है। और ब्राह्मणों सा आसन ऐसे ही उत्तम गुणों के कारण सब से बुलन्द है, इसी वास्ते अब इस सूद्र के कदमों पर झुकाना मुझे ना पसन्द है।

दुर्योधन—परन्तु मातेश्वरी! हमारे गुरु महाराज को आपने एक चमार के कदमों पर झुकने का हुक्म फरमाया, यह अनर्थ तो मेरी समझ में न आया।

गंगा—राजन! यह भेद आसानी से समझ में आना दुशवार है क्योंकि उसके लिए दिव्य दृष्टि दरकार है। परन्तु मैं तुम्हारा सन्देह मिटाऊँगी, अनर्थ का अर्थ समझाऊँगी।

दुर्योधन—उपकार विष्णु पदो, शङ्काहन्नी! उपकार। हमारे दादा की जननी उपकार।

गंगा—इस आत्मा ने एक भूल पर शाप के कारण यह दुःख झेला है वर्ना वास्तव में यह चमार नहीं, ब्राह्मण का पुत्र रामानन्द गुरु का चेला है। (दुर्योधन को हैरान देखकर) राजन् इसमें विस्मय न कर प्रमाण के लिए ला अपना खंजर, मैं अभी दिखाती हूँ सच्ची परीक्षा की रीति, (चेता का सीना चीर कर) इधर देख यह खाल के अन्दर मौजूद है यज्ञोपवीत।

(सब देखकर हैरान रह जाते हैं। चेता नारायण नरायण कहता रहता।)

टेबला

ड्राप

अङ्क ३ प्रवेश १

रणभूमि के समीप का हिस्सा

(पांडवों ने द्रोणाचार्य को धोका देकर मार डाला और उसका बदला लेने के निमित्त द्रोणाचार्य के पुत्र अश्वत्थामा ने पांडवों के पांचों पुत्रों का खून कर दिया। इसे गिरफ्तार करने के लिए हरचन्द कोशिश की गई मगर ना काम रहे और हजारों वीरों का खून होने के साथ कयामगाह में एक कोहराम वर्पा हो गया। और बच्चों के गम में बेकरारी से उत्तेजित होकर भीम और युधिष्ठिर कातिल की तलाश में निकले हैं अश्वत्थामा पांचों शिर अपने भाले में पिरोये हुए अपनी कामयाबी पर इतराता दाखिल होता है।)

अश्वत्थामा—मिल गया, मिल गया, बस मेरी मेहनत का फल मिल गया। पिता के खून की एक एक बूंद के बदले एक लाश तड़प रही है जो द्रोणाचार्य का नाम जप रही है।

बर आई उम्मीद मेरे दिल की,
सफल मनोरथ हुए हैं मन के।
कदम जो बिजली थे: अब वो,
सन्तोष से हुए हैं हजार मन के ॥
उजाड़ना जिस को चाहता हूँ,
यह पाँच गुल हैं उसी चमन के।
मेरी तो पांचों हैं आज घी में,

पिरो के तागे में पाँच मनके ॥
युधिष्ठिरादिक से कोई कह दे,
रुदन करो और मलाल पांचों ॥
कि मेरे भाले की नेचों जीनत,
हुए हैं पांचों के लाल पांचों ॥

(अश्वत्थामा जाता है, युधिष्ठिर और भीम दाखिल होते हैं।)

युधिष्ठिर—तुम्हें यकीन है कि अश्वत्थामा ही था ?

भीम—द्रोपदी ने अच्छी तरह पहचान कर तो कहा है।

(अश्वत्थामा वापस आता है)

अश्वत्थामा—और न पहचाना हो तो अब पहचान लो। यह वही अश्वत्थामा है जिसने तुम्हारे पांचों बेटों के मस्तक से पंचमुखी रुद्राक्ष की माला तैयार की है। ये वही अश्वत्थामा है, जिसने अपनी बर्छी पांचों की खोपड़ी से पार की है।

भीम—गुरु के नाम को शर्माने वाले ! तू ही बता क्या यह बात तूने नीति के अनुसार की है ?

युधिष्ठिर—आधी रात के समय, जब कि युद्ध बंद था तूने हमारे पांचों पुत्रों का सर काट डाला, यह गुरु महाराज ने किस रोज सिखाया था ?

अश्वत्थामा—ओ अधर्मियो ! मुझे उपदेश करते हो परन्तु मेरे पिता द्रोणाचार्य ने युद्ध में धोका और दगा करने के लिये किस रोज फर्माया था ? (युधिष्ठिर की ओर इशारा करके) यह जो धर्म का अवतार खड़ा है किस मुंह से मुझे धिक्कारता है ? क्या यह मेरे पिता से धर्म के अनुसार लड़ा है।

भीम—इन्होंने क्या अधर्म किया है ?

अश्वत्थामा—भीष्मपितामह की मृत्यु के बाद जो मेरे पिता द्रोणाचार्य ने सेनापति का पद ग्रहण करके समर भूमि में तुम्हारी

सेना को व्याकुल किया तो उस समय फतह के लोभ में झूठ बोला और पिता जी को धोका दिया। अपनी फौज के "अश्वत्थामा" नाम हाथी को मार कर शोर मचाया कि अश्वत्थामा मर गया। बस पुत्र शोक में उन्होंने हथियार डाल दिये और धृष्टद्युम्न का शस्त्र उनके हृदय में उतरकर अपना काम कर गया।

भीम—धिक्कार है तुझको कि तूने हमारे गुरु का पुत्र होकर सोते हुए वीरों के कलेजे में खंजर उतारा है।

अश्वत्थामा—हर्गिज़ नहीं, ऐसे नीच कर्म का ध्यान भी न करना। मैंने जिसे मारा है जगा जगा कर मारा है।

युधिष्ठिर—इस कर्म का दंड तो यही था कि तुम्हारा भी सर उतार लिया जाता परन्तु नहीं तुम हमारे गुरु पुत्र हो इस लिये केवल इतना ही दण्ड दिया जाता है कि तुम्हारे मस्तक की मणि जो तुम्हारे साथ पैदा हुई है उसे निकाल लिया जाता है।

भीम—यह भी इस लिये कि तुम जब तक जिओगे जख्म को देख देख कर अपने किये पर पछताओगे।

अश्वत्थामा—अब इस मणि की तो क्या सरकी भी परवाह नहीं।

आस पुरी हो गई मन लीन है वैराग में।
दुःख क्या होगा मुझे अब इस मणी के त्याग में॥

यह लो मैं आप निकाल देता हूँ।

(निकाल कर फेंक देता और चल देता है)

भीम—जा,गुरुके बालके जा,तेरा बदला तेरे हिमायती से लूंगा।

(दुर्योधन का आना)

दुर्योधन—ओ गदाधारी घमंडी पाखंडी! हिमायती का नाम मुंह से न निकाल। अगर हिमायती का बल देखना है तो अपनी गदा संभाल।

भीम—आजा, आजा सरतापा अभिमान ! आजा । मेरी प्रतिज्ञा पूर्ति के सामान ! आजा ।

याद आई है क़सम, मुश्किल है अब जीना तेरा ।
हो गये बरसों मगर भूला नहीं कीना तेरा ॥
मुष्टिका से तोड़कर रक्खूंगा अब सीना तेरा ।
हो चुका सग्राम बाक़ी है लहू पीना तेरा ॥
द्रोपदी की आँख से सूखेंगे वो आंसू नहीं ।
ख़ाक में और खून में तड़पेगा जब तक तू नहीं ॥

(दोनों का गदा युद्ध होता है भीम ग़ालिब आकर छाती पर बैठता है और गदा दिखाकर—)

प्यार कर और जान दे इसकी फबन पर आनपर ।
द्रोपदी बनकर गदा बैठी है तेरी रान पर ॥

(गदा फेंककर घूंसा दिखाता है)

इसको छाती से लगा, है द्रोपदी यह मुष्टका ।
तोड़ दे अय मुष्टका ! तू भी कलेजा दुष्ट का ॥

(कलेजा तोड़कर खून का घूंट पीता है । दुश्शासन आ जाता है)

दुश्शासन-धिक्कार है ऐसी प्रतिज्ञा पूर्ति पर, लानत है इस विकराल मूर्ति पर ।

भीम—शुक्र है परमात्मा तेरा शुक्र है (युधिष्ठिर से) महाराज जाइये और डेरों में से द्रोपदी को जल्द बुला लाइये ।

(युधिष्ठिर का जाना)

यह मेरी हसरथ थी यह उसका दिली अर्मान है ।
आ गया थाली में भोजन मेहरबां भगवान है ॥

दुश्शासन—शेख़ी ख़ोर मुंह ज़ोर जो अन्यायी है वही ऐसी फ़तह पर इतराते हैं । चेहया ! क्या गदा युद्ध करने वाले नाभि के नीचे ज़र्ब लगाते हैं ?

भीम—बेहया ! और हमारे बिस्तरों पर साँप छुड़ाने वाले, भोजन में जहर मिलाने वाले, लाख के घर में सुला कर उसमें आग लगाने वाले, जीते हुओं को दरिया में फिकवाने वाले, हयादार कहलाते हैं ? बोल यह कर्म दुर्योधन ने किये या नहीं ?

दुश्शासन—परन्तु उसने युद्ध में...... ....

भीम—ठहर जा, दो चार पल ठहर जा, भीम मजबूर है कि द्रोपदी जरा दूर है।

किस तरह करदूं जमीं को लाल तेरे खून से।
सींचने हैं द्रोपदी के बाल तेरे खून से॥

(द्रोपदी आती है, भीम दुश्सासन को पछाड़ कर उसकी आंतड़ियाँ खींचता और खूने जिगर से द्रोपदी के केश तर करता है)

अङ्क ३ प्रवेश २

जङ्गल

(इन्द्र और युधिष्ठिर आते हैं। एक कुत्ता भी साथ है)

इन्द्र—राजन्! इस हठ को त्याग दो, इसमें तुम्हारा लाभ नहीं है। जबकि तुमने युद्ध में जीता हुआ राज, ताज, धन, धाम सब त्याग दिया, चारों भाई और द्रोपदी को त्याग दिया तो इस कुत्ते के त्याग में क्या पसोपेश है?

युधिष्ठिर—देवराज! राज को अपना करके उसे त्यागने ही में बड़ाई थी—

न तजता मैं तो वह फिर आप क़ब्ज़ों से निकल जाता,
स्वभाव है उसका जाना ही, न जाता आज, कल जाता।

इन्द्र—यह कुत्ता भाइयों से अधिक प्यारा तो नहीं है?

युधिष्ठिर—भाइयों को मैंने नहीं त्यागा बल्कि हिमालय पर्वत में बर्फ़ के टुकड़े मृत्युरूप होकर उन्हें निगल गये। समय आ गया और कच्ची मिट्टी के खिलौने पानी में मिल गये।

इन्द्र—यही ईश्वरीय रचना का दस्तूर है कि जो बनता है वह बिगड़ता जरूर है।

युधिष्ठिर—परन्तु इस कुत्ते को बेरहमी के साथ छोड़ दूं इसका क्या कसूर है?

इन्द्र—(खुद) और भी आजमाना चाहिये (जाहिर) आपने अपने उत्तम कर्मों से स्वर्ग हासिल किया है और कुत्ते को स्वर्ग में जाने का अधिकार नहीं है।

युधिष्ठिर—तो मुझे इस वफ़ादार सेवक को छोड़ कर स्वर्ग में जाना स्वीकार नहीं है।

स्वार्थी बन कर पड़े जो बा वफ़ा को छोड़ना।
मुझ को है मन्जूर ऐसे स्वर्ग से मुंह मोड़ना॥

इन्द्र—धर्म राज ! स्वर्ग कुछ कुत्तों का स्थान नहीं है। इस अपवित्र जीव को छूने वालों का देवताओं में मान नहीं है।

कुत्ता महा मलीन है, कुत्ता है नापाक।
मांस, वमन, विष्टादि है, कुत्ते की खूराक॥
कुत्ते की खूराक सड़ी हड्डियाँ चबोड़े।
जिस शिकार पर दाँत धरे पीछा नहिं छोड़े॥
टुकड़े पर लड़ मरे तंग दिल है यह कुत्ता।
नहीं सगों का सगा संगदिल है यह कुत्ता॥

युधिष्ठिर—नहीं इन्द्र महाराज !

कुत्ता नमक हलाल है कुत्ता सच्चा दास।
कुत्ता स्वामी के लिये सहे भूक अरु प्यास॥
सहे भूक अरु प्यास दुःख में साथ न छोड़े।
यह स्वामी का भक्त मौत से मुंह नहिं मोड़े॥
जो मनुष्य, बन मित्र, देत हैं धोका, कुत्ता।
उन कुत्तों से लाख गुना अच्छा है कुत्ता॥

इन्द्र—धन्य हो धर्मराज धन्य हो ! आपने सच्चे सेवक के लिये स्वर्ग के सुख पर लात मारी है। ऐसे ही उत्तम कर्मों से आपके धर्म का पल्ला भारी है।

दासकी परवा हो, अपने ऐश की परवा न हो।
देखकर उसको दरे वैकुण्ठ क्योंकर 'वा' न हो॥

चलिए स्वर्ग को इज्जत दीजिए और कुत्ते को भी साथ लीजिये। (खुद) क्योंकि यह कुत्ता नहीं यम देवता है केवल परीक्षा के लिये यह रूप धारण किया है (जाहिर) वहां राजा दुर्योधन भी आपसे वैर भाव छोड़ कर मिलेंगे।

युधिष्ठिर—स्वर्ग में ?

इन्द्र—हां स्वर्ग में।

युधिष्ठिर—दुर्योधन और स्वर्ग में !

इन्द्र—हां राजन् ! दुर्योधन स्वर्ग में।

युधिष्ठिर—तो मुझे नरक में भेज दो।

इन्द्र—क्यों ?

युधिष्ठिर—दुर्योधन मेरे स्थान में है यह मेरा अपमान है। शत्रु के साथ स्वर्ग भी नरक है और मित्र के साथ नरक भी हो तो स्वर्ग के समान है।

इन्द्र—परन्तु स्वर्ग में तो शत्रुता, मित्रता, कुछ भी नहीं रहती।

युधिष्ठिर—न रहो, स्वर्ग है क्या चीज ? केवल सुख का नाम है और नरक दुःख का नाम। यदि मुझे सुख ही पहुंचाना है तो जहां मेरे चारों भाई और द्रोपदी हों वहीं ले चलो वहीं मिलेगा मुझे आराम।

इन्द्र—आपकी इच्छा, पधारिये और अपने भाईयों और द्रोपदी को घोर नरक के संकट में निहारिये।

युधिष्ठिर—पर्वा नहीं।

(आगे बढ़ना)

इन्द्र—हा क्रोध कैसा बलवान है। आज न शत्रु है न शत्रुता का निशान है परन्तु ऐसे धर्मात्मा तक को वही ध्यान है।

कामादि मशहूर हैं, जग में पांच विकार।
इन पाँचों के हाथ से, छुटना है दुश्वार॥

(जाना)

—०—

उक्त मकान का अन्य भाग

दुर्वासा—ऐसी भिक्षा से तो भूखे ही भले।

महा धिक्कार इस भोजन पे लानत ऐसे छकने पर।
मिलेगा एक टुकड़ा वह भी पहरों राह तकने पर॥

(गोपी आती है)

माई क्या हमें भूल गई ?

गोपी—अय है, महाराज बड़ी भूल हुईक्षमा कीजिये।

दुर्वासा—क्या खाक क्षमा कीजिये, साधुओं को घर में बिठा कर अपने आनन्द में लग जाती है, भीक देती हो या मजदूरी कराती हो।

गोपी—नहीं योगिराज ! मैं अपने दुखी पति की सेवा में जरा मशगूल हो गई, इसी कारण यह भूल हो गई क्षमा कीजिये

दुर्वासा—मूर्खा स्त्री ! पति के कारण देव समान साधु का समय नष्ट कर दिया, गृहस्थियों का कर्तव्य भ्रष्ट कर दिया।

गोपी—महाराज ! ईश्वर से छोटे, परन्तु सबसे बड़े देवता की सेवा में रुकने से गृहस्थ धर्म क्योंकर भ्रष्ट हो गया ? कौनसा कर्तव्य नष्ट हो गया।

कर रही होती अगर हर का भजन या सन्ध्या जाप।
मैं न करती छोड़कर उसको पती-सेवा कदाप॥
सब से पहले जग पती हैं- फिर पती हैं फिर हैं आप।
काम पदवी वार करने से हुआ किस तरह पाप॥

सब—दुहाई है, दुहाई है, धर्मराज की दुहाई है।

भीम—(अन्दर से) मुझे बचाओ।

अर्जुन— ,, मुझे इस अजाब से छुड़ाओ।

नकुल— ,, मेरी मदद को आओ।

सहदेव— ,, मेरे जलते हुए शरीर पर भी दो आंसू डालते जाओ।

द्रोपदी— ,, मुझे इन कांटों से निकालते जाओ,

सब— ,, निकालो निकालो, हमें निकालो।

युधिष्ठिर—अय फ़र्याद करने वालो! तुम कहां हो? कौन हो?

भीम—हम आपके चारों भाई और द्रोपदी बड़े अजाब में हैं।

युधिष्ठिर—हैं! मेरे भाई और द्रोपदी अजाब में! देवराज! यह मैं जागता हुआ सुनता हूँ या ख्वाब में? वेद और शास्त्र तो कहते हैं कि परमात्मा न्यायी है क्या इसी नाम न्याय है कि ऐसे धर्मवीरों और धर्मधारिणी के लिये यह जगह ठहराई है।

इन्द्र—हा!

गुण हैं उनके दोष भी जो आत्मा से हों न दूर।
कुछ नजर आता नहीं आँखों को अपरू का कसूर।

राजन्! परमात्मा जुरूर न्यायी है। न इसमें पक्षपात है न कोई बुराई है। उसकी गुप्त दृष्टि शुभाशुभ कर्म जाँचने का आला है, वह बारीक से बारीक पुण्य पाप को भी जानने वाला है।

खरा खोटा है मन भर में जो रत्तीभर, तो खुलता है।
यहाँ तो पाप भी और पुण्य भी कांटे में तुलता है॥

युधिष्ठिर—तो क्या मेरे भाईयों और द्रोपदी ने कोई ऐसा कर्म भी किया है जिसके कारण उन्हें नरक में डाल दिया है?

इन्द्र—कर्म जो कुछ भी किया है भोगना है फल जरूर।
कंकरी जल में जो फेंकोगे हिलेगा जल जरूर॥

युधिष्ठिर—तो भीमसेन ने ऐसा क्या कर्म किया है?

इन्द्र—भीम ने दुर्योधन के साथ गदायुद्ध में क्षत्रिय धर्म के खिलाफ़ नाभि से नीचे जर्ब लगाई, उसी पाप के कारण ये सजा पाई।

युधिष्ठिर—और अर्जुन ने?

इन्द्र—अर्जुन ने भी वीर धर्म हारा कि शिखंडी के पीछे छुप कर भीष्मपितामह के हृदय में बाण मारा। नकुल ने अपने उत्तम कर्मों पर अभिमान किया था और सहदेव ने अपने आपको दुनिया भरसे बुद्धिमान समझ लिया था।

युधिष्ठिर—और द्रोपदी ने?

इन्द्र—द्रोपदी जानती थी कि शिखंडी लड़का नहीं, लड़की है। उसने लड़की का विवाह लड़की के साथ होने दिया और अपने पिता को मना न किया।

खामोश देखती रही उत्सव विवाह का।
है और भी गुनाह छुपाना गुनाह का॥

युधिष्ठिर—परमात्मा क्षमा करे।

इन्द्र—अब यहां अपने आने का कारण भी सुन लीजिये।

युधिष्ठिर—मैं तो अपनी इच्छा से यहां आया हूँ।

इन्द्र—हर्गिज़ नहीं। होनहार फलके लिये उनके अनुसार इच्छा हुआ करती है। आप भी कर्म फल भोगने के लिये यहां आये हैं।।

युधिष्ठिर—मैं, मैं ने ऐसा.............

इन्द्र—धीरज से सुनो और पछताओ, तुमने अश्वत्थमा हाथी को मार कर द्रोणाचार्य से झूठ बोला कि अश्वत्थामा मर

गया। क्या तुम नहीं जानते थे कि गुरुपुत्र अश्वत्थामा ज़िन्दा है।

युधि०—सत्य है देवराज ! सत्य है, मैं अपने दिल पर नज़र डालता हूँ तो देखता हूँ कि उस नीच कर्म के कारण यह उस रोज़ से आज तक शर्मिन्दा है।

इन्द्र—अगर तुम्हारी ही नज़र में तुम्हारा फेल क़ाबिले शर्म है तो यह पछताना भी एक उत्तम कर्म है।

युधि०—परन्तु दुर्योधन को उसके पापों का फल कुछ न मिला ?

इन्द्र—अब मिलेगा, जिसका पाप अधिक और पुण्य कम है वह पहले सुख और पीछे दुख भोगता है।

युधि०—और जिसका पुण्य अधिक और पाप कम है ?

इन्द्र—वह पहले दुख और पीछे सुख भोगता है। तुम सब भाइयों और द्रोपदी का एक एक अपराध था जिसकी सजा में थोड़ी देर के लिये यहां की हवा खानी पड़ी और दुर्योधन का पुण्य एक था और पापों की संख्या बड़ी, इस लिये स्वर्ग का सुख भोग लिया घड़ी दो घड़ी।

युधि०—आगे क्या होगा ?

इन्द्र—दृश्य यह जो कुछ है वह सारा बदल जाने को है।
तुम वहां जाने को हो सब वह यहां आने को है॥

(इन्द्र और युधिष्ठिर गायब हैं नरक स्वर्ग से बदल जाता है स्वर्ग के अधिकारी स्वर्ग का सुख भोगते हैं)

ड्राप

—०—

गोपीवाला भाग

अङ्क ३ प्रवेश १

मार्ग

(दो चार भिक्षार्थी साधु गाते आते हैं)

गाना

साधु— फिरते तंग दाने दाने को दाना।
कर्मों से जब आता है बुरा जमाना॥

ठंडे जल में दें हाथ तो जल जाते हैं।
होठों पे ग्रास कें पाऊं फिसल जाते हैं॥
विष्णु वाहन को सांप निगल जाते हैं।
दुशमन कें सामने सरके बल जाते हैं।

पड़ता है नीच के आगे शीश झुकाना।
कर्मों से जब आता है बुरा जमाना॥

धन, बल, गुण, साथी नहीं इस दिन का।
दुन्या में करे क्या खाक भरोसा इन का॥
बल दश हजार हाथी से अधिक था जिन का।
जब आये बुरे दिन तोड़ सके नहिं तिनका॥

कुछ याद नहीं रहता हथियार चलाना।
कर्मों से सब आता है बुरा जमाना॥

(गाते गाते चले जाते हैं)

—०—

अङ्क ३ प्रवेश २

नन्दा का मकान

(गोपी और उसका कुष्टीपति बिहारी साधुओं के गाने की आवाज़ सुनकर उनकी प्रतीक्षा करते हैं)

बिहारी—देखो वो आवज़ आई, उन्हें बुला लो, ज़रा मेरा जी बहलेगा। (गोपी साधुओं को बुला लाती है)

गाना

साधु—मन पछितैहै अवसर बीते।
सहस बाहु दश बदन आदि नृप बचे न काल बली ते।
हम हम कर धन धाम संवारे अन्त चले उठि रीते॥ मन०
गला चुके सब तनका बाना मदिरा पीते पीते।
अब टांके भी नहिं ठहरते थक गये सीते सीते॥ मन०

बिहारी—मन था मगन व्यसन के मजे लूट लूट कर।
बदकारियों पे खूब पड़ा टूट टूट कर॥
अन्धा शराब था तो न थी यह खबर मुझे।
निकलेंगे पाप तन से मेरे फूट फूट कर॥ मन०
रान नाम लीनों नहीं हरसू कियो न हेत।
अब पछताए होत क्या जब चिड़ियां चुग गई खेत॥ मन०

(भिक्षा लेकर साधुओं का जाना दुर्वासा ऋषि का आना)

दुर्वासा—अलख अपार, बेड़ा पार, माता! खेत तइयार है क्या कुछ बोने का विचार है? गोपी—लाती हूं महाराज।

दुर्वासा—क्या लाती है? हम तो यहीं भोजन करेंगे।

गोपी—तो आप अन्दर विराजें मैं कुछ फलाहार लाती हूँ।

(दुर्वासा को अन्दर बिठाती है)

बिहारी—भगवान! अब तो उठा ले।

गोपी—आपके शरीर की पीड़ा कुछ कम हुई ?
बिहारी—पीड़ा ! पीड़ा अब चिता में कम होगी।
गोपी—नहीं नहीं, ऐसे बचन मुख से न निकालिये, मेरा दिल दहलता है।
बिहारी—देवी ! तुझे मुझसे सुख ही क्या मिलता है।
भला होगा तेरा कुछ मेरे होने से न होने में।
गुजर जाता है सारा दिन बदन की पीप धोने में॥
गोपी—और मैं हूँ ही किस लिये।
बिहारी—क्या एक कोढ़ी के जख्म धोने को ?
गोपी—स्वामी ! यह आपका रोग नहीं है पतिव्रता धर्म की कसौटी का रूप है संसार का सुख गलत पैदा करने वाली छाया है और मुसीबत परीक्षा करने वाली धूप है।
बिहारी—तरजता है मेरा दिल जब बदन छूती है तू मेरा।
जरूरत है जहां मेंहदी की लगता है लहू मेरा॥
देर वो दिन हैं, फूलों में तुले और लब पे हो "आहा"
मगर अब है कहीं धब्बा, कहीं पट्टी, कहीं फाहा॥
गोपी—यही मेरा सौभाग्य है, अच्छे पति की सेवा तो हर कोई कर सकती है, परन्तु अहो भाग्य कि इन रुधिर टपकते हुए चरणों में मेरी अटल भक्ति है :—
इन्हें धोने में लग जाता है धब्बा जब कि जंगारी।
लगा देता है दामन पर मेरे मोहरे बफादारी॥
दहाने जख्म से आवाज़ आती है बड़ी प्यारी।
कि ऐसी होती हैं देखो पतीवरता सती नारी॥
गाना—जगत को देने वाले चाह कुछ तंगी से अन जल दे।
करूं मैं पी की सेवा प्रेम से ऐसा मुझे बल दे॥
ये दोनों पुतलियाँ हैं बन सके इनका अगर मरहम।
निकाल आँखें मेरी और इनके जख्मों पर इन्हें मलदे॥
(गाते गाते अन्दर ले जाती है) —०—

अङ्क २ प्रवेश ३

नरक

(युधिष्ठिर को लेकर इन्द्र का आना)

युधिष्ठिर— जगह जगह बिछ रहे हैं कांटे,
कदम कदम पर छुरी कटारी।
किसी जगह पीप बह रही है,
कहीं लहू की नदी है जारी॥
कहीं है इक बेकसी का मातम,
कहीं है फर्यादो आहो जारी।
लिये है कब्जे में पाप सबको,
किये है हल्का गुनाहगारी॥

इन्द्र—नरक है राजन् मुकाम उनका न जिनको पर्वा हुई अमलकी।
गुजार लो आज तो मजोंमें तो कल समझ लेंगे बात कलकी॥

युधिष्ठिर—कब तलक ठूंसे रहें रूमाल को हम नाक में।
हर तरह बदबू है जिससे आ गया दम नाक में॥
आग भी है किस बला की जिसपे पड़ते ही नजर।
जल गए आंसू भी आकर दीदए नमनाक में॥

इन्द्र—अभी से घबरा गये अभी तो पहला ही कदम है।
युधिष्ठिर—मेरा तो ऐसी दुर्गन्धी से नाक में दम है।
इन्द्र—तो आगे न जाइये, लौट आइये। क्यों क्या विचार है?
युधिष्ठिर—मैं वापस लौट चलता हूँ यहां ठहरना तो दुश्वार है।
(युधिष्ठिर वापस होना चाहते हैं दोज़खियों की आवाज आती है)

तीसरे दरजे में भगवन अन्य जन का नाम है।
शास्त्रों के मानने में क्रोध का क्या काम है॥

दुर्वासा—शास्त्रों के नाम से हमें धमकाती है, एक तो इतनी देर बिठा रक्खा ऊपर से आँखें दिखाती है, साधुओं से पति का रुतबा बढ़ाती है।

गोपी—निस्सन्देह साधुओं से पति का रुतबा बड़ा है, साधु सेवा एक चाँदी का छल्ला है और पति सेवा सोने का कड़ा है।

रहें बारह बरस मौनी, न मुंह खोलें न कुछ बोलें।
तपें धूनी, नहाएं गङ्ग में, बन में सदा डोलें॥
हिमालय में गलें, पूजा करें, फिर सबके फल को लें।
पती-सेवा रहे भारी तराजू में अगर तोलें॥
निगलना है कठिन इसको बड़ा कड़वा है यह मेवा।
मगर संसार के जप तप से बढ़कर है पती-सेवा॥

दुर्वासा—अरे! मूढ़ अभिमानिनी!

न पूछी नम्रता से बात इक तो ऐसे योगी की।
हवन के कुण्ड में है इस पर आहुती घी की॥

गोपी—क्यों नहीं।

यह योग का है लक्षण अपने ही मुंह बड़ाई।
गोया यह खुद सिताई, है शाने पारसाई॥
फिर क्रोध का भी आना, है क़ल्ब की सफाई।
शक्ती जो आपकी है, मेरी नजर में आई॥
योगी ही मानते हैं, परमात्मा को नाई॥

दुर्वासा—शूद्रा! तू जो कुछ बकती है उसका मतलब मैं समझा।

इशारा है अदा अन्त्येष्ठी की रस्म करदो तुम।
मेरी आँखों से तू कहती है मुझको भस्म करदो तुम।

गोपी— करेगी क्या असर मुझपर निगाहों की शरर-बारी।
बज़ा से डाल दो जलती हुई होली में चिंगारी॥

लगा दो आग तुम वन में बुझा सकती हूं बिन पानी।
सती के सामने भरता है सूरज रात दिन पानी॥

दुर्वासा—तो सँभल जा, मैं शाप देकर जल छोड़ता हूं, तेरा घमण्ड तोड़ता हूं।

दिखा देता हूँ अब तुझको कि कितनी आग है जल में,
दया और दण्ड का सामान है मेरे कमण्डल में॥

(पानी चुल्लू में लेना, तत्काल श्री कृष्ण का प्रकट होना)

कृष्ण--सावधान ! क्रोधमूर्ति विद्वान् ! सावधान, शाप दे देने से पहले सती के मर्तबे का भी कर लेना ध्यान।

गोपी—कौन जगदीश्वर कृष्ण भगवान्।

दुर्वासा, गो०—बोलो श्री कृष्णचन्द्र की जय।

गोपी—नहीं योगीराज आप तो यूं कहिये कि बोलोः—
"नन्दा नाई की जय"।

युंही कुछ का कुछ समझ कर न करो ख्याल गन्दा।
यह वही तो मूर्ति है जिसे कह चुके हो नन्दा॥

याद आया या नहीं ? जब गताग्रम में आप पधारे थे तो श्री कृष्ण महाराज को आपने नाई बना दिया था और नन्दा के रूपमें देखकर नन्दा-नन्दा सम्बोधन किया था।

दुर्वासा—चिन्ता न करो यह नज़र नज़र का फेर है।

कोई रह जाता है सूरत देख कर,
कोई ले आता है दिल तक की ख़बर।
ज्ञानचक्षु हों तो फिर क्या दूर है,
चाहे बैठा हो कोई सौ कोस पर।

दुर्वासा—आपने नन्दा का रूप क्यों धारण किया था ?

कृष्ण—यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति तापस !
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम्॥

कहीं कीचड़ में जिस दम धर्म के पाऊं फिसलते हैं
जरूरत के मोताबिक हम भी पैराहन बदलते हैं

दुर्वासा—तो भगवन् इस समय कष्ट सहन करने का कारण ?

कृष्ण— इधर बल है सतीपन का इधर शक्ति तपोबल की,
तराजू में हैं दो चीजें इधर भारी इधर हलकी।
सँभालो जल न चल्लू में, यह निन्दा है कमण्डल की,
करो वह काम अब जाये न जिसमें आबरू जलकी।
दबा लो क्रोध को, दिल से निकालो शाप की इच्छा,
जो कहना था कहा हमने अब आगे आपकी इच्छा।

दुर्वासा—परमात्मन्! जल चुल्लू में आ चुका यह निष्फल तो हो ही नहीं सकता, अब इसे कहाँ डालूं ?

कृष्ण—अपने संकल्प का रुख मोड़ दो और इसके पति को कुष्ट रोग से मुक्त होने का आशीर्वाद देकर छोड़ दो।

दु०—तथास्तु।

(कह कर जल छोड़ना, बिहारी का कुष्ट दूर होना,
कृष्ण का अन्तर्द्धान होना)

अङ्क ३ प्रवेश ४

महल

(अर्जुन युद्ध में जय प्राप्ति पर हर्ष प्रकट करता हुआ युधिष्ठिर के साथ आता है)

अर्जुन— इक जमाने की मुसीबत सर पे आई फिर गई।
पहले हम से खूब की तेग़ाजमाई, फिर गई॥
फिर वही दिन आ गया अपने दिनों के फेर से।
आखिर अपनी फतह की जगमें दुहाई फिर गई॥

युधिष्ठिर—भाई अर्जुन यह फतह नाज के काबिल नहीं, शर्म के काबिल है।

बुद्धि जब भ्रष्ट हुई नष्ट हुए दोनों पक्ष।
छोड़े अन्धा धुन्द हाथ भाई पर भाई ने॥
ब्रह्मचर्य का घमण्ड सर्व खण्ड खण्ड हुआ।
खाया शस्त्र विद्या को भी मन की बुराई ने॥
दीखता था जिनमें सुचित्र बल वीरता का।
अपनी ठोकर से वो टूट गये आईने॥
आरत हो भारत पुकारत है हाय मुझे।
गारत किया महाभारत की लड़ाई ने॥

(धृतराष्ट्र को भीम लेकर आता है, एक सेवक के हाथ में थाल, थाल में ताज है)

धृत०—यही तो मैं भी कहता हूँ, परन्तु अब क्या होता है। बचे खुचे वीर शाद हों या नाशाद हों मगर फूट का यही फल है कि दोनों बरबाद हों।

युधि०—आपके कण्ठ पर खून कहाँ से लग गया ?

धृ०—हा ! भीम के पुतले की मैंने हड्डियाँ क्या तोड़ दीं ।
क्रोध ने और मोह ने आँखें हिये की फोड़दीं ॥

परन्तु अब पछताने का समय नहीं है । मेरे लिये दुर्योधन दांईं आँख था तो तुम बांईं आंख हो । बस राज सिंहासन को सँभालो और ताज को मस्तक पर धारण करो, क्योंकि मैं अब गृहस्थ को त्याग कर वानप्रस्थाश्रम में प्रवेश करूंगा इस लिये मेरी खुशी करो या न करो परन्तु धर्म की मदद करो और इस मुकुट को अपने मस्तक पर धरो ।

(युधि० को ताज पहनाना)

युधि०— मेरा सर आपके चरणों में कब झुकने से रुकता है ।
झुका है आज्ञा पर आजतक और अब भी झुकता है ॥

धृ०—अब आओ मुझसे गले मिलो (मिलना) चलो अब अपनी माता कुन्ती और गान्धारी की सान्त्वना करके हमें प्रसन्नता पूर्वक विदा करो ।

राज-भुवन

(पाण्डव, द्रोपदी, युयुत्सु, परीक्षितादि का आना)

द्रोपदी—यह ताज उन्हीं के लिये ताज है जिनके दिल को दुन्या के साथ लगावट है और हम सांसारिक वस्तुओं को त्याग कर देशाटन करते हुए हिमालय पर्वत पर जाते हैं तो हमारे रास्ते में यह एक रुकावट है।

नकुल—इसलिये इस रुकावट को दूर करो।

सहदेव—राज सिंहासन पर बैठना मंजूर करो।

युयु०—आपकी आज्ञा के आगे सर झुकाता हूँ (ताज पहनना) और अब, जब कि मैं इस ताज का मालिक हो चुका तो हक़ हक़दारों को पहुंचाता हूं।

(ताज उतार कर परीक्षित के सर पर रखता है)

अब मुकुट ने अपने सच्चे स्थान पर पहुंच कर शोभा पाई है। अब इस छोटे से राजा को बड़ा होने का आशीर्वाद और बधाई देने की घड़ी आई है।

सब—बधाई है राजा परीक्षित को बधाई है।

परी०—वाह ! यह तो गुरुजी ही का कहना आज ठीक हुआ कि शाही-ताजों में शाखामृग की सी चपलाई है।

धि०—वो क्यों कर ?

गाना—परी

यह ताज होता है साया गुस्तर, किसी के सरसे किसी के सरपर।
नहीं है सन्तोष इसको दम भर, किसीके सरसे किसी के सरपर॥
करार इसने कहीं न पाया, कि है यह शाखे शजर का साया।
जो पहुंचता है उतर-उतर कर, किसी के सरसे किसी के सर पर॥
जो सर है परदा सितार का है यह पोरुवा तन्तकार का है।
रवां दवां उंगलियां हैं यकसर, किसी के सरसे किसी के सरपर॥

—०—

अङ्क ३ प्रवेश ६

हिमालय

(पांचों भाइयों का आगे पीछे गिरते पड़ते आना)

भीम—अय हिमालय ! आ गये हम अब तो तेरे रागमें।
तेरी ठण्डी मार को समझे न भागा भागमें ॥

युधि०—मिल गया अय सर्द दिल ! क्या तुझको हमसे लागमें।
कर रहा है हमको ठण्डा अपनी ठण्डी आग में ॥

अर्जुन—हाथ, शाने, सरबसर आज़ाये मुअत्तल हो गये।
पाउं भी तलुओं से लेकर रान तक शल हो गये ॥

नकुल—मैं भी मजबूर हूँ चलना नहीं मेरे बसका।
जम गया बर्फ़ की मानिन्द लहू नस नस का ॥

(सबके आगे बढ़ जाने पर द्रौपदी पुकारती है)

द्रौपदी—ठहरिये महाराज ! ठहरिये।
मैं रही जाती हूँ और आप चले जाते हैं।
हो गया बर्फ़ बदन पाऊँ गले जाते हैं ॥
बर्फ़ रहज़न है यहां तफ़रका परवाज़ मेरी।
राह में आते ही लुट जाती है आवाज़ मेरी ॥

(नकुल, सहदेव, रक्षार्थ आते हैं और द्रौपदी को निष्प्राण पाते हैं)

नकुल—लौटिये महाराज ! लौटिये (हिमाच्छादिता द्रौपदी को दिखा कर) देखिये देवी पाञ्चाली की यह क्या दशा हो गई।
कहो देवी कुछ अपना हाल क्या बोला नहीं जाता।
यहां तक हो गई मजबूर मुंह खोला नहीं जाता ॥